1283

॥ श्रीहरिः ॥

सत्संगकी मार्मिक बातें

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

निवेदन

सभी सद्ग्रन्थ इस बातपर प्रकाश डालते हैं और विशेषतासे प्रतिपादन करते हैं कि मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है। उपनिषद्, गीता, रामायण सभीमें यह बात विशेषतासे कही गयी है। ''इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'' यदि इस मनुष्य-जीवनमें परमात्मतत्त्वको जान लिया तो ठीक है नहीं तो महान् हानि है। जो यह बात उपनिषद् आदिमें कही गयी है, इसी बातको जीवन्मुक्त महापुरुष कहते हैं तो उस बातमें एक विशेष महत्त्व हो जाता है। वे जो कुछ कहते हैं, स्वयं अनुभव करके कहते हैं और जिस साधनसे उन्होंने अनुभव किया है, उसीपर चलनेके लिये हमें प्रेरणा देते हैं।

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका भगवान्‌में इतना प्रेम हुआ कि भगवान्‌ने उनके सामने प्रत्यक्ष प्रकट होकर साकाररूपसे दर्शन दिये। इसलिये वे जो बातें कहते हैं उनसे हमें कितना अधिक आध्यात्मिक लाभ हो सकता है, यह हम स्वयं विचार करें। श्रद्धेय श्रीगोयन्दकाजीका एकमात्र उद्देश्य हमलोगोंका जन्म-मरणसे उद्धार करनेका था तथा जो आनन्द उन्हें मिला, वह हमें भी मिल जाय। अतः उन्हें सत्संग बहुत प्रिय था और इसका आयोजन वे स्वर्गाश्रममें गंगाजीके पावन तटपर ग्रीष्म-ॠतुमें करते थे। वहाँपर तथा अन्यत्र जो भी प्रवचन मनुष्योंके कल्याणके लिये उन्होंने दिये, उनमेंसे कुछको यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है, जिससे हमलोग अब भी उनसे आध्यात्मिक लाभ उठा लें। हमें आशा है, पाठकगण इन्हें पढ़ेंगे और मनन करेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

❑ ❑

॥ श्रीहरिः ॥

अच्छे आचरणोंकी महत्ता

किसी भी आदमीकी, किसी भी मत-मतान्तरकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, यह एक बड़ी ऊँची बात है। यह भी नहीं कहना चाहिये कि सब कुछ अच्छा ही है। इस विषयमें जितना भी कम बोले उतना ही अच्छा है। जितना भी अधिक बोला जायगा उतना ही अधिक फँसाव होगा। अपने-आपको जो अवगुण मालूम पड़ते हैं उनका अधिक सुधार होता है। मुझे आपने घरमें प्रणाम करते देखा तो आपने भी प्रणाम शुरू किया, किन्तु यदि मैं तुम्हें कहूँ कि प्रणाम करना चाहिये और मैं प्रणाम नहीं करता तो आप मनमें सोचेंगे कि प्रणाम करना है तो बहुत अच्छा किन्तु असर नहीं पड़ेगा।

ब्राह्मी पत्तीके लिये कहा गया कि यह बुद्धिवर्द्धक है, आपको सेवन करना चाहिये। आप क्यों नहीं करते? मैं तो आलस्यसे ही नहीं करता तो हमें आलस्यसे कहाँ फुरसत है। केवल कहना इसी तरहका है। दूसरा, स्वयं काममें लाना और कहना, तीसरा, स्वयं काममें लाना और कहना कुछ नहीं। बद्रिकाश्रम आदिमें बहुत-से ऋषि लोग तपस्या करते थे, किन्तु वे उपदेश, प्रवचन कुछ भी नहीं करते थे। कोई आकर उन्हें पूछे और वे उपदेश दें तो दूसरी बात है।

आचरणमें लानेवाला तो कोई भी नहीं दीखता। जिस तरह भगवा वेषवालोंमेंसे एक असली साधुको पहचानना कठिन है। इसी तरह इन प्रवचनकर्ताओंमें भी असलियत कहाँतक है, कुछ

प्रवचन—दिनांक २३/४/४०, वैशाख कृष्ण २, संवत् १९९६, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

भी मालूम नहीं होता। इस असलियतके मालूम न होनेके कारण हम लोगोंपर असर नहीं पड़ता। जिस तरह ***'थोथा चना बाजे घना'*** है इसी तरह वे बोलते तो बहुत हैं, किन्तु असलियतका पता लगाना बहुत ही कठिन है। वे लोग स्वयं ही जब उन बातोंको काममें नहीं लाते तो और दूसरे सुननेवाले कैसे उन्हें कार्यमें लायेंगे। इसीलिये हमारे ऋषि-मुनि किसीको उपदेश देनेके लिये नहीं जाते थे, अपितु एकान्तमें बैठकर अपने साधनकी सिद्धिमें तत्पर रहते थे।

हरेक पर्वपर साधु-महात्माओंको अन्न, वस्त्र, ब्राह्मणोंको रुपयोंका दान दिया जाय तो बहुत ही अच्छा है। नकद रुपये ब्राह्मणोंको ही देना चाहिये, वे ही पात्र हैं। साधुओंको आवश्यकतानुसार वस्त्र, अन्न, पुस्तक, यात्राके लिये टिकट आदि ही देना चाहिये। पवित्र आहार-विहारवालोंको दान देना बहुत ही अच्छा है। मांस-मदिरापान करनेवाले कुपात्रको दान नहीं देना चाहिये। अपनेको अपना कर्तव्य समझकर उसे सात्त्विकभावसे देना चाहिये। उसमें किसी तरहकी कामना नहीं रखनी चाहिये। सोमवती अमावस्या, व्यतीपात, एकादशी, पूर्णिमा—इस कालमें दान देना बड़ा ही अच्छा है। पात्र—ब्राह्मण हो, विद्वान् हो, आचरण उत्तम हो, ऐसे ब्राह्मण सब चीजोंको ग्रहण करनेके पात्र हैं। दान, यज्ञ आदि जितने भी यहाँ किये जाते हैं, कई गुना हो जाते हैं। इसलिये खूब दें, खूब भजन-ध्यान करें।

सेवा—साधु-ब्राह्मणोंकी, अनाथोंकी, गरीबोंकी और बीमारोंकी सेवा करनी चाहिये।

संयम—वस्त्र पहननेमें, भोजनमें सब इन्द्रियोंका और मनका संयम करना चाहिये।

सत्संग—सत्शास्त्रोंका पठन, साधु पुरुषोंका संग करना सत्संग है।

साधन—भजन-ध्यान आदि खूब जोरसे मन लगाकर करना चाहिये।

इस प्रकार ये चार बातें बड़ी ही उपयोगी हैं फिर इस तरहकी पवित्र भूमि है। जो आदमी कालके अनुसार कार्य करे, वह कालको जीत सकता है। बुद्धिसे परमात्माका सर्वत्र निश्चय, वाणीद्वारा नाम-जप, कानके द्वारा भगवान्की कथा सुनना, मनसे भगवान्का स्मरण करना चाहिये। हम इतनी दूरसे चलकर आते हैं, इसलिये खूब प्रेमसे और उत्साहसे सुनना चाहिये। जो बात सुने, उसका मनन करता जाय। नाम-जपमें जिह्वाको लगा दे और कानोंसे सुने, मन सुननेकी तरफ ही रहे। मन तो एक ही काम करता है। वह एक समयमें दो काम नहीं करता। परमात्माका मनसे मनन करना चाहिये। किसीकी निन्दा, स्तुति नहीं करनी चाहिये। यदि आदत पड़ गयी हो तो अपनी निन्दा जितनी कर सके करे और स्तुति ईश्वरकी चाहे जितनी करे वह कम ही है। इसी तरह अपनी आदतकी पूर्ति करनी चाहिये। सदा, सर्वदा भगवान्के नामका जप और कीर्तन तथा नियमोंका पालन करते रहनेसे बड़ा लाभ है।

❑❑

आनन्दके ध्यानकी विधि

प्रातःकाल स्वाभाविक ही भगवान्‌का ध्यान होना चाहिये। इस समय स्वाभाविक ही वृत्तियाँ सात्त्विक हैं, हवामें शान्ति है। यह हवा ध्यान करनेके लिये उपदेश दे रही है। गंगाजीसे स्वाभाविक शान्ति मिलती है। उनका दर्शन सहायक है। चारों ओर वन और पहाड़ ही दीखता है। यहाँ साधुलोग भजन-ध्यान करते हैं। ऋषि-महात्मा वनोंमें ध्यान-भजन करते थे और करते हैं। छायामें सबसे उत्तम वटवृक्षकी छाया है। गंगाकी रेणुका अति पवित्र है, सभी साज पवित्र हैं। गंगातट, ऊपर वटवृक्ष, इसमें स्वाभाविक ध्यान लगना चाहिये। इसमें दो चीज बाधक हैं, निद्रा और विक्षेप। विक्षेपके नाशके लिये नाम-जप और आलस्यके नाशके लिये विवेक है। सत्संगमें जो बात सुनी जाय, महापुरुषोंके द्वारा गीताके भावोंको सुने हुएका मनन करनेसे निद्रा नहीं आ सकती है। आलस्य-प्रमादकी उसमें गुंजाइश नहीं है। इस वायुसे बड़ा वैराग्य होता है और शान्ति मिलती है। शान्तिका भाव करनेसे शान्ति मिलती है। मुझे तो प्रत्यक्ष शान्ति मिलती है।

प्रथम ऐसा आसन लगाना चाहिये, जो सुगम हो। पैर दर्द करनेपर आसन बदल लेना चाहिये। एक-दूसरेको स्पर्श नहीं करना चाहिये, इससे विक्षेप होता है। ऐसा भाव करना चाहिये कि मेरी परमात्मामें सदाके लिये स्थिति हो जायगी। परमात्मतत्त्वके समझनेपर उसीको प्राप्त हो जाऊँगा, मुक्ति हो जायगी। यहाँ कोई मनुष्य-समुदाय नहीं है, शब्द नहीं है, आलस्य आता हो तो नेत्र खोलकर और नहीं आता हो तो नेत्र बन्द करके ध्यान करना

प्रवचन—दिनांक २६/४/४०, प्रातःकाल ८.१५ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

चाहिये। मनके संकल्पोंको रोकना मनको बन्द करना है। मनके संकल्परहित हो जानेपर उसके भीतर विचारोंका अभाव हो जाता है। चिन्तनका कोई प्रयोजन नहीं है। स्फुरणारहित होना चाहिये।

संसार स्वप्नवत् है। स्वप्नमें जो देखा जाता है, वह किसी कालमें और स्थानमें नहीं है, केवल एक सच्चिदानन्द परमात्मा ही व्याप्त हो रहा है। नारायणके उच्चारणसे समझना चाहिये कि उसके सिवाय और कुछ नहीं है। आनन्द कहनेपर आनन्दका ध्यान करना चाहिये। उस समय मस्त हो जाना चाहिये। आनन्द कहनेसे आनन्द बढ़ जाता है। उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिये।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ (गीता ६।२८)

वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दका अनुभव करता है।

प्रत्यक्ष देखनेमें कुछ कठिन नहीं है। आनन्दके ध्यानसे आनन्दको प्राप्त हो जाता है। आनन्दमय, पूर्णानन्द, आनन्द-ही-आनन्द, अहा! कैसा आनन्द है, इस शब्दके उच्चारणसे ऐसा मालूम होता है, मानो इसकी बाढ़ आ गयी है। हमारे बाहर-भीतर सब जगह आनन्द-ही-आनन्द है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गीता १३।१५)

वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर, अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।

यह संसार परमात्माका स्वरूप है। चर-अचर सबमें परमात्मा है। वास्तवमें परमात्मा अनादि और नित्य है, ऐसा समझना चाहिये। संसार और शरीर जो प्रतीत होता है, उसे अनित्य समझकर उसका त्याग कर देना चाहिये।

देखो कैसी शान्ति है, प्रसन्नता है, अलौकिक आनन्द है। मन, इन्द्रिय, रोम-रोममें अलौकिक चेतनता है। यह परमात्माका स्वरूप है।

यहाँ शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु चल रही है, यह शुभ लक्षण है। चारों तरफ शान्ति फैल रही है। शान्ति भगवान्‌का रूप है। इसीलिये जगह-जगह कहा है—‘**स शान्तिमधिगच्छति**’ शान्तिकी यदि वृद्धि हो तो मानना चाहिये कि भगवान्‌की प्राप्तिका कुछ साधन हो रहा है।

प्रसन्नता—दूसरी चीज प्रसन्नता है। शान्तिके उपरान्त प्रसन्नता प्राप्त होती है, आनन्द होता है, सुख होता है।

परमात्माका स्वरूप शान्तिप्रद और आनन्दस्वरूप है। भगवान्‌का जो चेतन स्वरूप है वह सुखमय है, ज्ञानस्वरूप है, आनन्दरूप है। इस प्रकार ध्यान करे। परमात्माका ध्यान ही ध्येयकी प्राप्ति करवाता है। शास्त्रोंद्वारा और महात्माओंद्वारा बतलाये हुए और मनद्वारा चिन्तन किये हुए स्वरूपका ही तो ध्यान किया जाता है।

बादलमें आकाश बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त है, इसी प्रकार परमात्मा भी सर्वत्र व्याप्त है। आकाश जिस तरह अनन्त है, इसी तरह ब्रह्म भी अनन्त है। आकाशकी भी सीमा आ जाती है, किन्तु भगवान्‌का अन्त नहीं आता। आकाशका तो समय पा करके अन्त भी होता है, किन्तु भगवान् सत्य हैं, नित्य हैं, आकाश जड़ है और परमात्मा चेतन है। आकाश शून्य है,

परमात्मा आनन्दमय है। एकान्तमें आनन्दकी भावना करे, वाणीसे आनन्दका उच्चारण करे, बुद्धिमें निश्चय करे कि सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है, वह आनन्द ही चेतन है। मनसे आनन्दका ऐसा मनन करे कि अपने-आपको भूल जाय। शरीरकी सुधि न रहे, फिर सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द रहेगा। वाणीमें और मनमें दोनोंमें ही आनन्दका समुद्र हिलोरें लेने लगे। इस तरहका भाव करनेसे प्रत्यक्ष आनन्द होता है। वास्तवमें आनन्द है, इसीलिये आनन्दका अनुभव होता है। वस्तुतः यह आनन्द पूर्ण है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकारसे सदा, सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्मसे ही पूर्ण है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तमसे ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्मकी पूर्णतासे जगत् पूर्ण है, इसलिये भी वह परिपूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्ममेंसे पूर्णको निकाल लेनेपर भी वह पूर्ण ही बच रहता है।

परमाणुरूपमें, बादलके रूपमें, बूँदके रूपमें, बर्फके रूपमें सर्वत्र जल-ही-जल है, इसी तरह वह चिन्मय परमात्मा ही परमात्मा है। इस प्रकार समझकर उसका ध्यान करे, आनन्दका अनुभव करे, उसे प्रत्यक्ष शान्ति और ज्ञानका अनुभव होगा। उसके पास तो आनन्द-ही-आनन्द शेष रहता है। इस प्रकारकी यह स्थिति सत्संगसे, वैराग्यसे, उपरतिसे, जपसे और पुनः-पुनः इस तरहकी आवृत्तिसे बढ़ती है।

इन चार वस्तुओंकी आवश्यकता है—वैराग्य, सत्संग, उपरति और नाम-जप। सर्वप्रथम रागका अभाव होता है, रागके अभाव

होते ही वैराग्य और फिर उपरामता होती है, फिर परमात्माका ध्यान अपने-आप ही होता है। इसी तरह एकान्तमें बैठकर नामका जप करनेसे हमारा मन शुद्ध, पवित्र होकर तन्मय हो जाता है, इसलिये शान्तिसे ध्यान करनेपर आलस्य और विक्षेप नहीं आ सकते।

प्रभुका यह ऐसा आनन्दमय स्वरूप है। आनन्द-ही-आनन्द है। खूब विचार करके देखो, सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है। यह जो आनन्द मिल रहा है, वह उस आनन्द-समुद्रकी बूँदकी छायाका एक अणुमात्र है। यह आनन्द ही परमात्माका रूप है। सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है। आनन्द, आनन्द, आनन्दमय, आनन्दमय, आनन्दमय।

जैसे बर्फके ढेलेको गंगामें प्रवेश करा दिया जाय तो उसके चारों ओर जल-ही-जल है। बर्फका ढेला भी जल ही है। इसी प्रकार यह स्थिर शरीर बर्फके समान है। जलके समान परमात्मा हमारे चारों ओर है। आकाश निराकार है। बादलके बाहर-भीतर आकाश है, उसी प्रकार मेरे बाहर-भीतर परमात्मा है। परमात्मा चिदानन्दघन विज्ञानानन्दघन है। हमारे शरीरमें ज्ञान है, उससे अधिक अन्तःकरणमें और उससे अधिक द्रष्टाके स्वरूपमें यह चेतनता है। जिसका आत्मा परमात्माको प्राप्त हो गया है, जिसके शरीरपर दुःख आनेपर वह विचलित न हो, वह जीवन्मुक्त है। जीवित समयमें शरीर काटनेपर, जलानेपर किसी प्रकार विचलित न हो, यह जीवन्मुक्तकी परीक्षा है।

❑❑

आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर

सभीको कपड़ा उतारकर भोजन करना चाहिये। तीन बार गंगाजीमें स्नान करना चाहिये, शास्त्रोंके विचारसे कपड़ा पहने भोजन करना निषिद्ध है। वस्त्र नित्य धोना चाहिये। रेशमी, ऊनी कपड़े दूसरे परमाणुओंको फेंक देते हैं, इसलिये उन्हें कई दिनके लिये पवित्र माना गया है। शास्त्रका नियम है, धोतीके अतिरिक्त एक उत्तरीय पवित्र वस्त्र भी भोजनके समय रखना चाहिये।

प्रश्न—मृगचर्मको उत्तम क्यों माना है?

उत्तर—रोओंके सहित जो मृगचर्म होता है वह दूसरे परमाणुओंको ग्रहण नहीं करता है, इसलिये वह पवित्र होता है। ऋषियोंने जिसे पवित्र माना है, हम भी उसे पवित्र मानते हैं।

प्रश्न—यदि धर्ममें अधर्म और अधर्ममें धर्म मान लें?

उत्तर—दान लेनेवाला कुपात्र हो तो देनेवाला और लेनेवाला दोनों पापके भागी होते हैं। यहाँ दाता पुण्य करते हुए भी पापका भागी होता है। यदि कोई राजा हिंसक जीवोंको मारता है तो वह धर्म होता है। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—जैसा युद्ध तुझे मिला है, वैसा हर एकको नहीं मिलता है। युद्ध करना दुर्योधनके लिये पाप और अर्जुनके लिये पुण्य है। दुर्योधनके लिये पाप इसलिये कि वह दूसरेका हक हड़पकर युद्ध करना चाहता था। यदि वह युधिष्ठिरको राज्य देकर युद्ध करता तो वह उचित हो सकता था।

एक सत्यनिष्ठ धर्मात्मा थे। जंगलमें एक कुटियामें रहते थे। एक दिन कुछ बनिये डाकुओंसे भयभीत होकर कुटियाके पीछे वनमें छिप गये। डाकुओंके पूछनेपर उन धर्मात्माने बनियोंका

प्रवचन—दिनांक २६/४/४०, संवत् १९९६, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

पता बता दिया। इसलिये वे मुनि नरकको गये। सत्य बोलना दूसरोंका गला काटनेमें हेतु बना इसलिये अधर्म हुआ।

एक घोर वनमें एक पशु था, उसने ब्रह्मासे वर माँगा कि मैं वनके सभी जीवोंको खा जाऊँ। ब्रह्माने ऐसा वर देकर उसे अन्धा कर दिया। एक व्याघ्रने उस अन्धे पशुको मार डाला। यहाँ उस हिंसकको मारनेसे धर्म हुआ।

प्रश्न—याज्ञवल्क्य ऋषिने जीवन्मुक्तिका आनन्द लेते हुए भी गृहस्थाश्रम क्यों त्यागा?

उत्तर—आश्रमसे आश्रमको जाना चाहिये, यह न्याय है। दूसरोंके शिक्षार्थ उन्होंने गृहस्थाश्रमको छोड़कर संन्यास लिया, यह ठीक ही किया। जीवन्मुक्त होकर उनका सारे संसारको जीवन्मुक्त बनाना लक्ष्य था। राजा जनकके लिये कोई कर्तव्य नहीं था। वे सभी काम करते थे। याज्ञवल्क्य महात्मा थे, वे आदर्शके लिये एक आश्रमसे दूसरे आश्रमको गये। राजा जनक दूसरे आश्रममें नहीं गये। वे भी संन्यास लेनेके लिये तैयार हुए थे। तैयारीके समय उनकी स्त्रीने कहा कि यदि आपको कुछ प्राप्त करना है, तब तो संन्यास ले लें और यदि दूसरोंके लाभार्थ संन्यास लेते हैं तो आप मेरे लाभके लिये गृहस्थमें ही रहिये।

यदि याज्ञवल्क्य कुछ अनुचित करते तब तो ऐसी शंका ठीक थी, परन्तु उन्होंने आदर्शके लिये ऐसा किया था, इसलिये ऐसा ठीक था। जनकका गृहस्थाश्रममें रहना और याज्ञवल्क्यका संन्यास लेना उचित था।

प्रश्न—संन्यास लेनेमें अधिक आनन्द था?

उत्तर—ऐसी बात नहीं है। शिवजी गरुड़को उपदेश दे सकते थे, परन्तु उन्होंने पक्षीजातिके काकभुशुण्डिजीके यहाँ उन्हें भेजा। संन्यासियोंके लिये उन्होंने संन्यास लिया।

राजा अश्वपतिके पास छः ऋषि जिनके दस-दस हजार शिष्य थे, गये। राजाने आदर-सत्कार किया, उन्हें बहुत रुपया दिया गया। इसपर उन्होंने इनकार किया। राजाने कहा—यदि आप मेरे धनको निषिद्ध समझते हैं तो यह ऐसा नहीं है, मेरा धन न्यायोचित है। मेरे राज्यमें चोरी, व्यभिचार, मदिरापान आदि न होनेसे यह पापका पैसा नहीं है, यह पवित्र धन है, आप स्वीकार कीजिये। ऋषियोंने कहा—हम इस छोटे धनके लिये नहीं आये हैं। हम ब्रह्मविद्या, ब्रह्मतत्त्वको जाननेके लिये आये हैं। राजाने कहा—मैं क्षत्रिय हूँ, मैं दानरूपमें आप ब्राह्मणोंको दे सकता हूँ। राजाने उन्हें उच्चासनपर बैठाकर ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया, स्वयं नीचे बैठे। इस प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया।

मेरा अधिकार उपदेश देनेका नहीं है, क्योंकि मैं वैश्य हूँ और गृहस्थ हूँ। इसलिये आपकी सेवामें प्रार्थनारूपमें यह बातें कही जाती हैं। यदि आप कोई अच्छी बात समझें तो ले लें। विक्षेप साधकको होता है, सिद्धको नहीं, यदि सिद्धको हो तो वह सिद्ध नहीं है। राजा जनकके लिये कोई कर्तव्य नहीं था, परन्तु वे लोकसंग्रहके लिये सब काम करते थे।

प्रश्न—काम, क्रोध प्रारब्धवश होते हैं या लीलासे।

उत्तर—महापुरुषोंकी जानकारीमें ये होते हैं। पुलिसका अधिकारी सिपाहियोंको अपराधियोंको लानेके लिये भेजता है, वह सिपाही अधिकारीके सामने हाथ जोड़ता है और साधारण आदमियोंके यहाँ रोब दिखाता है। उसी प्रकार काम-क्रोधादि ब्रह्मको प्राप्त पुरुषोंके यहाँ चाकरकी तरह रहते हैं और साधारण आदमियोंके यहाँ शासककी तरह।

ज्ञानवान् सारी दुनियाको अपने स्वरूपमें देखता है। शीत-

उष्ण, सुख–दुःख, अनुकूलता–प्रतिकूलता ज्ञानी सभीको समान भावसे देखते हैं। ज्ञानी सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी नहीं होता। निन्दा–स्तुतिमें भी ज्ञानी समान भाववाला रहता है। ऐसी समता जिसमें है, वही ज्ञानी है। सुख–दुःखका फल है हर्ष–शोक। संसारके पदार्थोंका फल हर्ष–शोक है। अगर समझो, मेरा पुत्र मर गया, पर मुझे दुःख नहीं हुआ तो फिर दुःखका ज्ञान ही होनेसे क्या आपत्ति है। समताका मतलब है कि न दुःखका असर न सुखका असर, किसी प्रकारका विकार नहीं होता।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ (गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

दुःख–सुख प्रतीत हो तो कोई बात नहीं, पर उसका विकार नहीं आना चाहिये। असर न आवे तो ज्ञानी ही है। हर्ष–शोक न हो तो फिर कोई आपत्ति नहीं, चाहे जितने दुःखके निमित्त आयें। परमात्मामें स्थिति होनेपर ज्ञानी उनसे रहित हो जाता है और वह हर्ष–शोक नहीं पाता। सम रहना बड़ा मूल्यवान् है, मिट्टी–पत्थर सब समान हो जाय तो फिर कोई आपत्ति नहीं।

प्रश्न—दूसरोंके दुःखको ज्ञानी कैसे दूर करे, जब उसके लिये सब सम है।

उत्तर—भगवान् कहते हैं कि मुझे सब समदर्शी कहते हैं, पर मैं भजनेवालेको भजता हूँ न भजनेवालेको नहीं भजता, यह भगवान्‌की विषमता नहीं मानी जाती है।

ज्ञानीकी सारी क्रियाका त्याग और ग्रहण न्याययुक्त है। जब समझता है कि न्याययुक्त है तो वह करता है। अपने शरीरकी बीमारीको ठीक करनेकी कोशिश करनेपर भी यदि प्रतीकार न हो तो भी वह न्याय है। दुःख आता है तो उपचार भी न्याय है। अज्ञानीकी चेष्टा अन्याययुक्त होती है। ज्ञानीका कर्म न्याययुक्त है। जनकादिने भी न्याययुक्त किया।

महात्माकी अपने और दूसरेके शरीरमें समबुद्धि रहती है। पर उनको व्यवहार वैसे ही करना चाहिये जिससे दूसरोंको शिक्षा मिले। दुनियामें मान सभी चाहते हैं, पर ज्ञानीको दुनियाको सिखाना है कि ये सब त्याज्य हैं, भोग सिखानेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। जिसकी आवश्यकता नहीं उसका त्याग करना, सिखाना ज्ञानीका कार्य है। ज्ञानीको चाहिये कि यह बताये कि इत्र आदि पेशाबके तुल्य हैं। साधकके लिये जो उपयोगी बात हो वह दुनियाको सिखाये। जिससे दुनियाको ज्ञान हो वही बात सिखाये। वे फँसे तो पड़े ही हैं, उन्हें तो छुटकारेका उपाय ही सिखाना है।

राजाको प्रजाका, भर्ताको स्त्रीका, गुरुको शिष्यका पाप भोगना पड़ता है। वास्तवमें पापका भागी वह होता है जो दूसरेको शिष्य बनाकर सेवा कराता है और शिष्य अपात्र रहता है तो उस गुरुको पाप लगता है। स्त्रीको भर्ताका, प्रजाको राजाका, पुत्रको पिताका, शिष्यको गुरुका पाप नहीं लगता, क्योंकि स्त्री, प्रजा, पुत्रादि दूसरेके आधीन हैं। यदि स्त्री आज्ञा न माने तो ऐसी स्त्रीको छोड़ देना चाहिये। ऐसे प्रजा, शिष्यादि जो आज्ञापालन न करें तो उन्हें त्याग देना चाहिये। स्त्री-पुत्रादि यदि अपने पति, पिताको कुमार्गमें जाते देखें तो उन्हें सुमार्गमें लानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

प्रश्न—गीताको वेदसे श्रेष्ठ माननेपर शूद्र और स्त्रीका पढ़नेका, सुननेका अधिकार है या नहीं?

उत्तर—वेद ब्रह्माके श्वास हैं। इतिहास और पुराण बनाये गये हैं। महाभारत इतिहास है। गीता महाभारतके अन्तर्गत है। कोई कहता है कि उनका सुननेका अधिकार है और कोई पढ़ना और सुनना दोनोंका अधिकार मानते हैं।

कुछ वर्ष पहले ऋषिकेशमें करपात्रीजी महाराजमें और मालवीयजीमें सभीको पढ़ने-सुनने और केवल सुननेके अधिकारमें बहुत शास्त्रार्थ हुआ। दोनों आदमियोंने शास्त्रोक्त बहुत प्रमाण दिये। मुझे मध्यस्थ बनकर इसका निर्णय करनेके लिये पूछा गया। मैंने बहुत इनकार किया। मुझे करपात्रीजीने हृदयकी बात कहनेके लिये शपथ दी। मैंने कहा, मालवीयजीका कहना शास्त्रोक्त है और करपात्रीजीका भी कहना शास्त्रोक्त है, इसलिये जो जैसा माने उसके लिये वही ठीक है। कोई शूद्र कहता है कि मेरा पढ़ने, सुननेमें अधिकार है तो उसका कहना ठीक है, मैं कहूँगा कि तुम्हारा अधिकार है और यदि वह कहेगा कि मेरा केवल सुननेका अधिकार है तो मैं कह दूँगा, ठीक है।

मैं तो ऐसा मानता हूँ कि जो गीताका भक्त है, उसका पढ़ने-सुननेका अधिकार है। अर्जुनको निमित्त बनाकर सबके लिये यह गीता बनायी गयी है।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।

यहाँ स्त्री और वैश्यको उच्च बतलाकर शूद्रको उससे नीचा बतलाया गया है **'तथा'** शब्दसे अर्थ अलग हो जाता है।

❑❑

ध्यानका महत्त्व

संसारका अभाव करके मनको एकदम भगवान्‌में लगा देवे। सत्यको धारण करनेवाली बुद्धि अचल होती है। संस्कारोंका निरोध होनेपर समाधि होती है। बुद्धिमें तीन बात आनेपर यह बात समझमें आती है। यदि बुद्धि पवित्र हो जाती है तो सब बात समझमें आ जाती है। बुद्धि निष्कामभावसे पवित्र होती है। उससे भी ज्यादा नाम-जपसे होती है। ध्यानसे स्थिर होती है। सत्शास्त्रोंके अध्ययनसे तीक्ष्ण हो जाती है। ये तीन बातें आवश्यक हैं। श्रवण, मनन, निदिध्यासनकी आवश्यकता है, यह सब एक ही बात है। भजन, ध्यान, सत्संग—इन तीनोंसे बुद्धि तीक्ष्ण, स्थिर और पवित्र हो जाती है। साधनोंमें वैराग्य और उपरामता इन दोनोंका होना बहुत आवश्यक है। शास्त्राध्ययन न हो तो गीता तो पढ़ लो। वैराग्य जब-जब हुआ, तब-तब ध्यानमें और किसी भी बातकी कमी नहीं रही। उपरामताकी जाति वैराग्य है। वैराग्य होकर उपरामता होती है। पवित्र देशमें अपना आसन लगाना चाहिये। यह भूमि बड़ी अच्छी है, स्वाभाविक वैराग्य है, यहाँ स्वाभाविक उपरामता है। आसनके लिये रेणुकाका आसन स्थिर और सुखपूर्वक होना चाहिये। आरामसे हो नहीं तो हमारा ध्यान आसनपर जायगा, विघ्न बहुत आते हैं। चंचलता और आलस्यको निकाल डालो, फिर ध्यान होगा। आलस्य निद्राके अन्तर्गत आता है। भजन, ध्यान, सत्संगसे सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं। विवेकपूर्वक जो मनन है, वह आलस्यको खा जाता है। नाम-जप विक्षेपको खा जाता है। जैसे साबुनसे कपड़ा साफ हो जाता है, वैसे नाम-जपसे मन साफ हो जाता है। फिर उपरामता और वैराग्य हो जाते हैं, फिर विघ्न तो ठहर ही नहीं सकते। नाम-जप मनसे, जीभसे, होंठसे हो सकता है। जिह्वासे, श्वाससे, आँख, नाक, बन्द करके अनहद शब्दसे जो शब्द होता है, उसमें नामका सम्बन्ध जोड़ दे, फिर सुषुम्नासे सम्बन्ध जोड़ दे तो वह भी श्रेष्ठ है। जो मनके

प्रवचन—दिनांक २८/४/४०, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

संकल्पसे हो, वह मानसिक नाम-जप है। यह क्रमसे एक-एकसे श्रेष्ठ है। स्वतन्त्र मनसे जप करना बहुत कठिन है।

जैसे आप भोजन करते हैं, पर मन कुछ और काम करता है और उन संकल्पोंकी जगह रामकी आकृतिको देखें, यदि यह न हो तो 'रा' और 'म' को वर्णरूपसे देखें, श्वासके साथ एक बार भी कर सकते हैं, बार-बार भी कर सकते हैं। अलग-अलग विधि है, जैसे जो कर सके वही ठीक है। जब साकारका ध्यान हो तब अनुलोम-प्रतिलोम हो जाता है। जब निर्गुणका विलय हो तो सूक्ष्मरूपसे कारणमें विलीन होकर संसार समाप्त हो जाता है। फिर परमात्मा ही रह जाता है। संसारका अभाव होकर प्रकाश दिखायी देता है, फिर ज्ञानमें, चिन्मयमें, फिर ज्ञानसे चेतनमें विलीन हो जाते हैं। फिर साकारमें, चिन्मयमें होते हैं, फिर प्रकाशमें तथा प्रकाशसे तेजोमय होकर आँखोंका विषय हो जाते हैं। फिर साक्षात् स्वरूपसे भगवान् दर्शन देते हैं।

ब्रह्म क्या वस्तु है, ब्रह्मको समझनेके लिये आनन्दको विशेष्य बनाकर समझना चाहिये। ब्रह्मके सोलह विशेषण हैं। आनन्द-ही-आनन्द, जितने नाम बताये वे सब निर्गुणके विशेषण हैं।

पूर्ण आनन्द, अपार आनन्द, शान्त आनन्द, घन आनन्द, अचल आनन्द, ध्रुव आनन्द, नित्य आनन्द, बोधस्वरूप आनन्द, ज्ञानस्वरूप आनन्द, परमानन्द, महान् आनन्द, अत्यन्त आनन्द, चिन्मय आनन्द, अनन्त आनन्द, सम आनन्द, केवल आनन्द।

इसका भाव समझना चाहिये। आनन्दके सिवाय कुछ नहीं है। इस बातका निश्चय करके बुद्धि ध्यान करते-करते ध्येयाकार हो जाती है। उसके बाद कुछ नहीं रहता, इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान करे। फिर संसारमें शरीर पड़ा रहे, उसको कुछ भी नहीं सूझता। वह तो उस अमरपदको प्राप्त हो जाता है, जिसकी श्रुति-स्मृति आदि महिमा गाते हैं।

❑❑

आनन्दके स्वरूपका वर्णन

निराकारके ध्यानमें वैराग्य और उपरामताकी बड़ी आवश्यकता है। इन दोनोंके प्राप्त होनेपर समाधि आदि अपने-आप ही लग जाती है। वैराग्य स्वतः हो जाय तो ध्यानके लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी। हमारे तो थोड़ी-सी ही उपरामता हो जाती है तो स्वतः ही ध्यान हो जाता है। जब उपरामता और वैराग्य नहीं है तो बहुत प्रयत्न करनेपर भी मन स्थिर नहीं होता। वैराग्य होता है तो संसारके पदार्थोंके चित्र स्वतः ही शान्त हो जाते हैं। मेरे तो किसी समय इस तरहकी झलक रास्ते चलते-चलते आ जाती तो मन करता कि यहीं बैठ जायँ, लोक-लाजसे नहीं बैठते फिर दूसरी जगह जाकर बैठकर ध्यान करते। ध्यानके समान साधन नहीं है। यहाँ वैराग्य हो जाता है। यह स्थान भोगीके लिये अनुकूल नहीं है। जितने भोग-पदार्थ हैं, साधकके लिये बाधक हैं, भोगीके लिये आराम देनेवाले होते हैं। मेरी स्वाभाविक वृत्ति रहती है कि कहीं तीर्थपर जाता हूँ तो देखता हूँ कि ध्यानके लिये यह स्थान कैसा है। इस बार ७,००० मील घूमे, इस तरहका स्थान कम ही मिला। यह भूमि उत्तराखण्डकी तपोभूमि बड़ी पवित्र और एकान्त है। तीनोंकी ही आवश्यकता है। सम्भव है, यहाँ पूर्वसमयमें ऋषियोंने तपस्या की होगी। न जाने इस भूमिमें क्या है? न जाने गंगाजीकी जो हवा है उसमें करामात है। सम्भव है, महापुरुषोंने तपस्या की होगी। यह आश्रम ही ऋषियों-जैसा है। बहुत वर्षोंसे देखता हूँ, यह मालूम देता है कि यह जगह ऋषिसेवित है। जैसे कोई हिंसक जगह होती है तो वहाँ बैठनेसे हिंसाके परमाणु आ जाया करते हैं। हमलोग

प्रवचन—दिनांक ३०/४/४०, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

ध्यान करनेके लिये आये हैं। हमारे सिवाय यहाँ कौन आता है। नजर उठाकर देखा जाय तो चारों तरफ वन-ही-वन दिखायी देता है। वटवृक्षका दृश्य भी बड़ा उत्तम है, गंगाकी ध्वनि मानो ब्रह्मचारी वेदका पाठ करते हों। रेणुकाका आसन भी उत्तम है।

यहाँ सात्त्विकता भरी है। वायु भी सहायक हो जाती है। इसमें दो बात मिलती है आरोग्यता और वैराग्य। भोग और आरामकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो थोड़ी तकलीफ हो सकती है। असली चीज वैराग्य ही है। विषयभोग तो कुत्तेकी योनियोंमें भी है। मखमलके गद्देपर सोनेपर हमें जो आनन्द मिलता है, मैं अनुमान करता हूँ कि गधेको राखपर लेटनेसे कुछ कम नहीं मिलता। आरामकी दृष्टिसे मखमल और राखमें क्या अन्तर है, केवल मनकी कल्पना है। प्रत्यक्षमें देखिये, मनके मानेकी ही तो बात है। सबके बालोंका शौक अलग-अलग है। किसी एक प्रकारकी हजामतमें सुख मिलता तो दुनिया उसी तरहकी हजामत बनवाती। ऐसे ही सारे पदार्थोंके बीचमें यही बात है। वस्त्रोंकी ओर दृष्टि डालते हैं तो हमारी दूसरी, अमेरिकावालोंकी दूसरी, काबुलवालोंकी दूसरी है, कौन-सी अच्छी है? ऋषिलोग वल्कल वस्त्र पहनते थे, उनको उसमें ही आनन्द था। संसारमें सुख तो है ही नहीं, वैराग्यमें सुख है, राग-द्वेष तो त्याग करनेकी चीज है। वैराग्यके सुखका सबको अनुभव नहीं है। महात्मालोग कहते हैं, रागसे लाखों गुना सुख वैराग्यमें है, इससे भी ज्यादा ध्यानमें है, ध्यानसे भी ज्यादा सुख परमात्माकी प्राप्तिमें है।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥ (गीता ५।२१)

बाहरके विषयोंमें आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला साधक आत्मामें

स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है; तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके ध्यानरूप योगमें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष अक्षय आनन्दका अनुभव करता है।

इस श्लोकमें दो सुख बतलाये गये हैं। एक साधनकालका सुख है, दूसरा साधनका फल है। इस प्रकार हर एक श्लोकमें हमें ध्यान देना चाहिये। जैसे—

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥ (गीता ५। २४)

जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।

भीतरसे ही मननवाला है, उससे होनेवाले सुखसे सुखी है। हमको ध्यान रखना चाहिये कि हम ऐसे स्थानमें बैठे हैं, प्रभुकी कृपा है ही, अतः ध्यान लगेगा ही। जहाँ प्रभुकी चर्चा होती है, वहाँ आलस्य नहीं आ सकता, यदि आता है तो समझना चाहिये उसकी रुचि नहीं है। फिर खयाल रखनेकी यह बात है कि नामजपसे विक्षेपका विनाश हो जाता है। जहाँ विवेक होता है, वहाँ बुद्धिकी आवश्यकता होती है। जहाँ बुद्धि तीक्ष्ण होती है, वहाँ आलस्यकी सामर्थ्य नहीं कि पास आ सके। जिन्होंने भगवान्‌की शरण ले ली है उनके पास मायाका कार्य आलस्य नहीं आ सकता। जिसका ध्यान लग जाय वह तो ध्यानमें बैठा ही रहे, ध्यानको ही अपना जीवन बना लेना चाहिये।

मेरे तो इस प्रकारका अनुभव है कि मैं विचार कर लूँ कि आज आठ घंटा बैठना है, फिर परमात्माकी कृपासे ध्यान लग जाय तो बैठा रहना कोई बड़ी बात नहीं है। ज्यादा आनन्द तो

तभी है कि सब आदमी दिनभर ध्यानमें बैठे रहें। मेरी तो धारणा है कि महापुरुषोंकी कृपासे अटल समाधि लग सकती है, फिर परमात्माकी कृपासे लग जाय इसमें बात ही क्या है। तीन घंटा तो मामूली बात है, यह तो हमारी खुराक है।

नारायण! नारायण! नारायण!

नारायणके नामका उच्चारण करते ही सब स्वाहा हो जाता है। नारायण शब्दका अर्थ है, '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' मनसे उसका मनन करे, बार-बार आनन्द शब्दका उच्चारण किया जाता है। इसके मुख्य-मुख्य सोलह विशेषण हैं।

देखो कैसी अद्‌भुत गन्ध आ रही है। शान्तिप्रद मन्द-मन्द वायु है। इससे ध्यानमें सहायता मिलती है। वृत्तियाँ पवित्र हो जाती हैं।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ (गीता २। ६५)

अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें भलीभाँति स्थिर हो जाती है।

आनन्दको विशेष बना लेवें और सब विशेषण, जैसे दुर्गाका पाठ करनेवाला एक श्लोकका संपुट दिया करता है, ऐसे ही अपने भी नित्य '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' की भावना लगानी है। अष्टप्रहरी पीपलकी तरह न हो सके तो एक प्रहरीकी तरह छोटी भावना ही लगा लें।

इसका भाव समझकर उसमें तन्मय हो जाय, धारा बाँध दे।

१. **पूर्ण आनन्द**—पूर्णका मतलब कमी नहीं, जैसे मनुष्य तृप्त हो जाता है तो कहता है कि पूर्ण, पूर्ण, जैसे घड़ा जलसे भर जाता है, उसमें गुंजाइश नहीं है, ऐसे ही मन आनन्दसे भर जाता है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ (गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

इस श्लोकसे पूर्ण आनन्द समझना चाहिये। इसमें क्या विशेषता है? जबतक यह लालसा रहे कि और आनन्द हो, तब-तक यही समझना चाहिये कि अभी आनन्दकी कमी है। जब आनन्दकी गुंजाइश नहीं रहे, तब वह पूर्ण आनन्द है।

२. **अपार आनन्द**—यानी जिसका पार नहीं है। पूर्ण आनन्द, अपार आनन्द एक ही है। मुमुक्षुकी दृष्टिसे भेद किया जाता है। वह देश-कालकी सीमासे रहित है। जैसे आकाशकी सीमा नहीं, उसको अपार कहते हैं। जिसका पार नहीं है और जिसके परे कुछ है ही नहीं, इसलिये देश-काल किसी भी रूपमें उसका अन्त नहीं होता।

३. **शान्त आनन्द**—विक्षेपका अत्यन्त अभाव होनेके बाद जो शान्ति होती है उसका नाम शान्त आनन्द है। परमात्मा शान्तिस्वरूप है। आकार-विकार-विक्षेपरहित जो पदार्थ होता है, वह शान्तमय होता है। परमात्माका स्वरूप शान्तिमय है। जहाँ किसी प्रकारका विकार, विक्षेप, उपद्रव नहीं, ऐसी स्थिति होनेके बाद जो शान्ति होती है, वह शान्तिमय आनन्द है। क्षणिक शान्तिके लिये हम कितना प्रयत्न करते हैं। परम शान्ति तो उसे कहते हैं जो नित्य कायम रहती है।

४. **घन आनन्द**—वह आनन्द कैसा है, घन; घनको कैसे समझे, खूब गहरा है, गहरा कैसा? समुद्रकी तरह नहीं, पत्थरकी

तरह जैसे शिला घन है ऐसे ही परमात्मा घन है, परन्तु शिला तो जड़ है। आत्माके स्वरूपमें आत्मा ही है। आत्मामें कोई चीज प्रवेश नहीं हो सकती। कोई कहे, भूत-प्रेत प्रवेश हो जाता है। यह तो हृदयमें हो सकते हैं, आत्मामें नहीं। द्रष्टामें कोई चीज नहीं घुस सकती। जैसे एक म्यानमें दो तलवार नहीं जा सकती। तलवार जा भी सकती है, क्योंकि वहाँ पोल है, परन्तु द्रष्टामें कुछ प्रवेश नहीं कर सकता। द्रष्टा दृश्य नहीं हो सकता। दृष्य कभी द्रष्टा नहीं हो सकता। योगी तो दूसरेके शरीरमें प्रवेश हो जाता है? नहीं, योगीकी आत्मा तो कहीं जाती-आती नहीं, मन प्रवेश कर सकता है। द्रष्टा तो वासना आदि जो मनके अन्तर्गत हैं, उनको जाननेवाला वह ज्ञाता है। उसको (आत्माको) कोई जान ही नहीं सकता। ज्ञाताको (आत्माको) यदि कोई जान जाय तो वह तो ज्ञेय हो जायगा। ज्ञेय जड़ होता है, आत्मा चेतन है। ज्ञाता अपने-आपको स्वयं ही जानता है।

संसार सारा ज्ञेयमें है, चेतनमें नहीं है। आइनेमें हमारा चित्र दीखता है, किन्तु आइनेमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता, इसी प्रकार सारा संसार उस ज्ञातामें दिखायी पड़ता है। वास्तवमें उसमें नहीं है, इसीलिये गीतामें कहा है—

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ (गीता १३। ३४)

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होनेको जो पुरुष ज्ञान-नेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं।

जो कुछ क्रिया होती है, तीनों गुणोंके द्वारा ही होती है। गुण क्या चीज है? जड़ है, आत्मा पर है। इस प्रकार जो देखता है, भगवान् कहते हैं कि वह मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। अपने प्रकरणपर आ जाता हूँ। जिसमें गुंजाइश नहीं है, ठोस है, उसे

घन कहते हैं। काँच घन है, परन्तु उसमें भी आग घुस जाती है; परन्तु वह आनन्द तो ठोस है, चेतन है, द्रष्टा है। अपने शरीरमें आत्मा है, उसमें कोई पोल नहीं है, इसी प्रकार आनन्द-ही-आनन्द है और कोई गुंजाइश नहीं है।

५. **अचल आनन्द**—आत्मा अचल है। देहके साथ चलता-दीखता प्रतीत होता है। वास्तवमें आत्मा नहीं चलता। तीनों शरीर ही चलते हैं। जैसे पहाड़ है वह भी अचल है, परन्तु वह जड़ है, किन्तु आत्मा अचल है। इसके लिये सरकनेकी गुंजाइश नहीं। आकाश देशकी दृष्टिसे तो अचल है, कालकी दृष्टिसे नहीं। प्रलय होता है, तब इसका भी नाश हो जाता है। आत्मा न देशकी दृष्टिसे चल है न कालकी दृष्टिसे। आत्मा सदा कायम रहता है। किसी रूपमें नहीं बदलता। हमारेमें जितने भाव बदलते हैं, सब अन्तःकरणके हैं। सूक्ष्म शरीर बदल जाता है, किन्तु आत्मा नहीं। अचलके लिये दृष्टान्त हमारे लिये आत्मा ही है।

६. **ध्रुव आनन्द**—ध्रुव दो बात बतलाता है, ध्रुव तारा एक स्थानमें रहता है, दूसरा निश्चल रहता है। ध्रुव वस्तु सत्ताका वाचक है। वास्तवमें सत्य पदार्थ है, इस बातको बतलानेके लिये ध्रुव शब्दका प्रयोग किया है।

७. **नित्य आनन्द**—नित्य शब्द कालका वाचक है। इसमें कालकी प्रधानता है। यह सदा रहता है, जैसे पदार्थमें परिवर्तन होता है, वैसे इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। ब्रह्ममें काल नहीं है। भूत, भविष्य, वर्तमान सबकी मायामें कल्पना होती है। यह कालका भी महाकाल है, इसलिये इसको नित्य कहा है। आत्मा निर्विकार है, शाश्वत है। वह परम आनन्द नित्य है, सदा रहता है।

८. **बोधस्वरूप आनन्द**—यह आनन्द बोधस्वरूप है। संसारके विषयोंसे जो सुख मिलता है, वह बोधस्वरूप नहीं है।

वह ज्ञेय है, हम ज्ञाता हैं। वह भोग्य है, हम उसके भोक्ता हैं। यह आनन्द ज्ञानस्वरूप है। इसको स्वयं ही अपने-आपका ज्ञान है। ब्रह्म बनकर ही ब्रह्मका अनुभव करता है। बुद्धिके द्वारा ब्रह्मका जो निश्चय किया जाता है, वह ब्रह्म नहीं है। उस आनन्दका ज्ञान तो उस आनन्दको ही है।

९. **ज्ञान आनन्द**—बोध और ज्ञान एक-सी ही बात है, फिर भी सूक्ष्म भेद बतलाया जाता है। जैसे गीतामें बतलाया गया है—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ (गीता १३। १७)

वह परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है।

सबके हृदयमें स्थित है, ज्योतियोंका भी ज्योति है। यह ज्ञान है, यही जानने लायक है। वह जो आनन्दमय ब्रह्म है, वह ज्ञानके द्वारा जाना जाता है। बुद्धिके द्वारा जो जाननेमें आता है, वह ब्रह्म बुद्धिविशिष्ट है। सांसारिक सुखका अनुभव इन्द्रियोंसे होता है, इन्द्रियोंसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है, बुद्धिसे परे आत्मा है। आत्मा जानता है कि मेरी बुद्धि कैसी है। सबसे बढ़कर चेतनता आत्मामें है। जाननेका ज्ञान है, इसलिये उसको ज्ञानानन्द कहा है।

१०. **परमानन्द**—वह इन सबसे परे आनन्द है। सात्त्विक, राजस, तामस जो आनन्द है, वह इस आनन्दका आभासमात्र है। लौकिक आनन्द है, वह प्रतिबिम्ब है। परमानन्दके आनन्दके सामने लौकिक आनन्दकी कितनी सीमा है। लौकिक आनन्द बतलाया जा सकता है। जिस ब्रह्माण्डमें हम स्थित हैं, ऐसे लाखों ब्रह्माण्ड हैं। इन सबके आनन्दको इकट्ठा कर लिया जाय तो उस

सागरस्वरूप आनन्दकी एक बूँदके बराबर भी नहीं हो सकता। कैसे समझाया जाय। जैसे एक तरफ स्वप्नका त्रिलोकीका राज्य और एक तरफ पाँच पैसे। स्वप्नके संसारको बेचनेपर एक पैसा भी नहीं आ सकता। परम नाम है श्रेष्ठका, सबका आधारस्वरूप आनन्द है, उससे परे कुछ है ही नहीं, इसलिये परमानन्द कहा है।

११. **महान् आनन्द**—परम शब्द श्रेष्ठका वाचक है, महान् बड़ेका वाचक है। महान् आनन्द है उससे बड़ा कुछ भी नहीं है। वह बड़े-से-बड़ा, श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ है।

१२. **अनन्त आनन्द**—अनन्त इस बातको बतलाता है, जिसका अन्त हो ही नहीं। जिसकी सीमा नहीं, देश, काल किसी भी रूपमें अन्त नहीं। उस ब्रह्ममें अत्यन्त और अनन्त दोनोंका भाव है, अनन्त माने जिसका कभी विनाश नहीं होता। परमात्माका स्वरूप अनन्त है।

१३. **अत्यन्त आनन्द**—जिससे अतिशय न हो। निरतिशय अतिशय है। वही अत्यन्त है, अपरिमित है, असली बात तो यह है।

१४. **चिन्मय आनन्द**—चिन्मय है वह आनन्द है, आनन्द विशेष्य है, चिन्मय विशेषण है। उदाहरणके लिये समझाया जाता है **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** वह कैसा है? वह ज्ञानस्वरूप चेतन आनन्द है। आत्मा चेतन है, बोधस्वरूप है, चेतन है। वह आनन्द है। चेतन खुद आनन्द है, इसमें चेतनताकी प्रधानता है।

१५. **सम आनन्द**—सम अर्थात् समान। जैसे आकाश सम है। आकाश कहीं कम कहीं अधिक नहीं है। आकाशमें बादल हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। इससे आकाशमें कुछ विकार नहीं होता, ऐसे ही उस विज्ञानानन्दमें संसार उत्पन्न होकर विलीन हो जाय, उसमें कुछ अन्तर नहीं आता। जैसे कहा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥ (गीता ५। १९)

जिनका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है, क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं।

अन्तःकरणमें जो समता आती है, उसमें और उपरोक्त समतामें अंतर है। बुद्धिके जाननेमें जो समता आती है वह जड़ है। परमात्माका समस्वरूप चेतन है।

१६. **केवल आनन्द**—इसमें केवल आनन्द-ही-आनन्द है। ज्ञानके सिवाय वहाँ तो कोई पदार्थ ही नहीं है। ऐसी वाणीके उच्चारणसे प्रसन्नताकी लहरें उठने लग जाती हैं। फिर जब मनसे मनन किया जाता है, उस समय क्या शोक, मोह रह सकते हैं। आप ध्यान करके देखें। मैं बतला रहा हूँ उसे आप सुन रहे हैं। जब सुननेसे ऐसी स्थिति हो सकती है, फिर वास्तवमें जिनकी ऐसी स्थिति होगी उनकी बात ही क्या है। ऐसे महात्माओंको मेरा कोटिशः प्रणाम है।

ब्रह्मका जो वास्तविक स्वरूप है, उसका तो कोई वर्णन कर ही नहीं सकता। इसलिये हमारा कर्तव्य है, रात-दिन ध्यानमें मस्त रहें।

ध्यानावस्थामें मृत्यु भी हो जाय तो उसका ऐसा महत्त्व है कि जिसके लिये ध्यान करता है, उसको प्राप्त हो जाता है।

आनन्दमय, आनन्दमय, आनन्दमय।

❑❑

भक्ति तथा पतिव्रताकी महिमा

जबहिं नाम हिरदे धर्‌यो भयो पापको नास।
जैसे चिनगी अग्निकी परी पुराने घास॥

गीतामें भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ (गीता ९। ३०)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

पाप रहे तब भोगे। भगवान्‌का भक्त भगवान्‌के शासनमें रहता है। उससे गलती नहीं होती है। पापके कारण काम, क्रोध, लोभ हैं, ये उसमें नहीं रहते।

बसहि भगति मनि जेहि उर माहीं। खल कामादि निकट नहिं जाहीं॥

भक्तसे पापके ये योद्धा दूरसे ही भाग जाते हैं। जब भगवान्‌की भक्ति करने लगता है, तब उसको छोड़कर ये विदा हो जाते हैं। एक तो यह बात है कि पाप उससे बनते ही नहीं, पूर्वके होते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

भगवान्‌की भक्ति करनेसे भक्तका पाप नाश हो जाता है। क्या स्त्री इस तरहसे पतिकी भक्ति करती है तो उसके भी पाप नष्ट हो जाते हैं? हाँ उसके ही नहीं, उसके पतिके भी पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके पातिव्रत धर्मके प्रतापसे उसके पतिको उत्तम-से-उत्तम गति मिलती है। उसका पति पापी भी हो तो भी वह मुक्त

प्रवचन—दिनांक ३०/४/४०, मध्याह्न, स्वर्गाश्रम।

हो जाता है। ऐसा कहीं उदाहरण भी आता है? हाँ आता है। शाण्डिली नामकी एक पतिव्रता स्त्री थी। उसका पति पापी था। वह वेश्याके यहाँ जाया करता था। उसके पैरसे चला नहीं जाता था। पतिव्रता स्त्री उसको वेश्याके यहाँ पहुँचाकर वापस लाती थी। एक दिनकी बात है, माण्डव्य ऋषिको सूलीपर चढ़ानेका दण्ड दिया गया था। उस पतिव्रताके पतिके पैरसे सूली हिल गयी तो ऋषिने शाप दिया कि जिसके पैरसे सूली हिली है, सूर्योदय होनेपर उसकी मृत्यु हो जायगी। उस पतिव्रताने कहा सूर्य उदय होंगे तब तो मृत्यु होगी। तीन दिन हो गये सूर्य उदय ही नहीं हुआ। देवतालोग उसके घर आये। उसके पतिको जीवनदान देनेका आश्वासन देकर सूर्यभगवान्‌को उदित होनेकी अनुमति देनेके लिये इन्द्रादि देवता उससे प्रार्थना करने आये। यह पतिव्रत धर्मका प्रताप था। उसी दिनसे उसके पतिने यह सब काम त्याग दिया और वे दोनों परमगतिको प्राप्त हो गये। जो स्त्री पतिकी सेवा करनेवाली होती है उसको अपने पतिके पुण्यका आधा हिस्सा मिलता है। स्त्रीको अपनी आत्माके कल्याणके लिये कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है; जो कुछ करे पतिके लिये करे, उसके कल्याणसे उसका कल्याण है।

गीताका अधिकारी भगवान्‌का भक्त है। भगवान्‌ने कहा है कि मेरे भक्तोंको सुनाओ। यह तो कहा है कि जो हमारे भक्त न हों उनको मत कहो, यह नहीं कहा कि अछूतको मत कहो, स्त्रियोंको मत कहो, अमुकको मत कहो। मेरे भक्तोंमें जो इसका प्रचार करता है, वह मुक्त हो जाता है। उसके समान मेरा प्रिय कार्य करनेवाला कोई नहीं है। भगवान्‌ने ऐसा कहा है। गीतामें मनुष्यमात्रका अधिकार है। मेरा तो ऐसा सिद्धान्त है कि जो

अपना अधिकार मानता है उसीका अधिकार है, जो अधिकार नहीं माने वह न सुने, जो सुनानेका अधिकार नहीं मानता है, वह न सुनावे। गीतामें जिसकी श्रद्धा है, जो सुनना चाहता है, उसका गीतामें अधिकार है। भगवान्‌ने तो कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ (गीता ९। ३०)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

जातिसे नीच हो, चाहे आचरणोंसे नीच हो, मेरी भक्ति करेगा तो परमपदको प्राप्त हो जायगा। भगवान् उसका त्याग भी कैसे कर सकते हैं। वह भगवान्‌का ही तो बनाया हुआ है। माता अपने कुपुत्रका भी त्याग कैसे कर सकती है?

प्रश्न—जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाता है, उसमें कितना समय लगता है।

उत्तर—योनिके अनुसार समय लगता है।

प्रश्न—यदि हत्या हो गयी या मोटरसे दबकर मर गया तो क्या गति होगी?

उत्तर—किसी समय भी मृत्यु हो संकल्प तो रहता ही है। संकल्पके अनुसार गति होती है।

अकालमृत्युका विवेचन

प्रश्न—अकालमृत्यु किसे कहते हैं?

उत्तर—मृत्यु तीन प्रकारसे होती है—परेच्छा, स्वेच्छा, अनिच्छा। बुद्धि भ्रष्ट होकर जो मृत्यु होती है वह अकालमृत्यु है। भूकम्प

हुआ, हम मर गये तो अनिच्छासे मृत्यु हुई। हमारे पास रुपया है, डाकू आये, छूरी मार दी, हम मर गये, यह परेच्छासे मृत्यु हुई। बीमारीसे या दैवी प्रकोपसे जो मरते हैं, वह अनिच्छासे मृत्यु है। अनिच्छासे तथा परेच्छासे मृत्यु अकालमृत्यु नहीं है। वास्तवमें अकालमृत्यु तो वह है कि समय तो नहीं आया, फिर भी मरना चाहे। बुद्धि भ्रष्ट होनेसे अकालमृत्यु होती है। क्रोधके आवेशमें आकर आत्महत्या करना ही अकालमृत्यु है।

पापका तो त्याग नहीं कर सकते, पुण्यका त्याग कर सकते हैं। एक आदमीकी आयु साठ वर्षकी है, वह पचास वर्षमें ही आत्महत्या करके मर गया। दस वर्षतक उसको दूसरी योनि नहीं मिलेगी, वह प्रेतयोनिमें रहेगा। उनके लिये कहा है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(ईशावास्योपनिषद् ३)

मानव-शरीर अन्य सभी शरीरोंसे श्रेष्ठ और परम दुर्लभ है एवं वह जीवको भगवान्‌की विशेष कृपासे जन्म-मृत्युरूप संसार-समुद्रसे तरनेके लिये ही मिलता है। ऐसे शरीरको पाकर भी जो मनुष्य अपने कर्मसमूहको ईश्वर-पूजाके लिये समर्पण नहीं करते और कामोपभोगको ही जीवनका परम ध्येय मानकर विषयोंको आसक्ति और कामनावश जिस-किसी प्रकारसे भी केवल विषयोंकी प्राप्ति और उनके यथेच्छ उपभोगमें ही लगे रहते हैं, वे वस्तुतः आत्माकी हत्या करनेवाले ही हैं; क्योंकि इस प्रकार अपना पतन करनेवाले वे लोग अपने जीवनको केवल व्यर्थ ही नहीं खो रहे हैं वरं अपनेको और भी अधिक कर्मबन्धनमें जकड़ रहे हैं। इन काम-भोग-परायण लोगोंको—चाहे वे कोई भी क्यों न हों, उन्हें चाहे संसारमें कितने ही विशाल

नाम, यश, वैभव या अधिकार प्राप्त हों—मरनेके बाद कर्मोंके फलस्वरूप बार-बार उन कूकर, शूकर, कीट-पतंगादि विभिन्न शोक-संतापपूर्ण आसुरी योनिमें और भयानक नरकोंमें भटकना पड़ता है (गीता १६। १६, १९, २०), जो ऐसे आसुरी स्वभाववाले दुष्टोंके लिये निश्चित किये हुए हैं और महान् अज्ञानरूप अन्धकारसे आच्छादित हैं। इसीलिये श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है कि मनुष्यको अपने द्वारा अपना उद्धार करना चाहिये, अपना पतन नहीं करना चाहिये (गीता ६। ५)।

इस प्रकारका पाप बतलाया गया है, इसीलिये तो यह प्रार्थना की जाती है—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

भगवान् विष्णुका चरणोदक अकालमृत्युका हरण करनेवाला तथा समस्त व्याधियोंका विनाश करनेवाला है। मानव उसका पान करके संसारमें पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता।

इस जन्ममें आप अपराध करेंगे तो उसका फल आजका आज भी हो सकता है, किसीका जन्मान्तरमें मिलता है। कोई वर्षाके लिये यज्ञ करता है तो वर्षा हो भी जाती है। दशरथजीने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। उनके पुत्र हो गये। इसलिये यह सिद्ध हो गया कि इस जन्ममें किये हुए कर्मोंका फल इस जन्ममें भी भोग सकते हैं। बच जाते हैं वे अगले जन्ममें भोगने पड़ेंगे।

एक तो शुभाशुभ कर्म है, एक शुभाशुभ फल है। नयी क्रिया होती है, उसका नाम कर्म है। नवीन कर्म होते हैं उसमें प्रारब्ध हेतु नहीं है। अपनी आपकी हत्या करना पाप है। यह प्रारब्धसे नहीं होता, यह तो अपने स्वभावसे होता है।

❑❑

ध्यानमें वटवृक्षके स्थानकी महिमा

यहाँ वैराग्य तो स्वाभाविक सिद्ध है। वैराग्यकी बात कही गयी, अब तो स्वाभाविक ही हृदयमें वैराग्यकी लहरें उठनी चाहिये। हमलोग सब घर चले जाते हैं, घरपर ध्यान करते हैं, यहाँका चित्र याद कर लेते हैं तो चित्तकी वृत्तियाँ बदल जाती हैं। यहाँका दृश्य अलौकिक दृश्य है। गंगाके इस पार और उस पार वन-ही-वन है। यह वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है। महात्मालोग वनमें प्रवेश कर जाते, वहाँ कोई चीज नहीं दीखती, उनके वैराग्य छा जाता। हमलोग भी वनमें प्रवेश कर जाते हैं तो वनमें घुसनेसे ही चारों तरफ वैराग्य छा जाता है। हमलोग अपने देशोंमें चले जाते हैं, वहाँपर भी इसका चित्र वैराग्य उत्पन्न कर देता है। अब तो इस जगह ही बैठे हुए हैं। हमलोगोंको वैराग्य नहीं होता तो मैं तो यही समझता हूँ कि हमलोगोंको कोई वैराग्यवान् उपदेश दे तो वैराग्य हो सकता है। मैं तो गृहस्थ हूँ। कोई बहुत विरक्त पुरुष हो, संसारसे उपराम हो, हमलोग भी पात्र हों तो एक बारके आदेशसे ही ऐसा वैराग्य हो जाय कि जीवनपर्यन्त उसका नशा बना रहे तो कोई आश्चर्य नहीं। भाई लोगोंके भी कभी वैराग्य होता है तो जैसे ज्वर उतर जाता है, उसी प्रकार थोड़े कालमें उतर जाता है। तीव्र वैराग्यवान् महापुरुष वनमें जब विचरते हैं, उनकी छायासे, उनके दर्शनसे दूसरोंके वैराग्य हो जाता है। उनका स्मरण करके हमको उपराम होना चाहिये। उपरति और वैराग्य ये शब्द ही ऐसे हैं, जिनसे मनुष्यके वैराग्य हो जाता है। अब हमलोगोंको प्रभुके ध्यानमें मस्त होना चाहिये। ध्यानके पूर्वमें

प्रवचन—दिनांक १/५/४०, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

प्रभुका आवाहन करना चाहिये, फिर समझना चाहिये मानो प्रभु आ ही गये हैं, फिर प्रेममें विह्वल हो जाना चाहिये। होश आये तब भगवान्‌की पूजा करनी, भोग लगाना, आरती उतारनी चाहिये। फिर प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु हमारे हृदयमें आपका यह ध्यान कायम रहे, हम आपसे यही चाहते हैं। वसिष्ठजीने भी भगवान्‌से यही प्रार्थना की थी।

भगवान्‌से यही प्रार्थना करें दर्शन चाहे मत दो, हमारा यह ध्यान बना रहे। ध्यानके लिये पहले सुखपूर्वक स्थिरतासे बैठना चाहिये। आवाहन करना चाहिये, फिर मानो भगवान् आ गये हैं। ध्यानमें मस्त हो जाना चाहिये। यहाँ जो वायु चलती है, मन्द-मन्द गन्ध आती है, प्रत्यक्षमें शान्तिप्रद है। यहाँ कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता, प्रत्यक्षमें शान्ति बढ़ती जाती है। यहाँ मृत्यु भी हो जाय तो कृतकृत्य हो गये। भगवान्‌से प्रार्थना करे कि ऐसी अवस्थामें हमारी मृत्यु हो तो ठीक ही है।

मनको सब ओरसे हटाकर, उपराम होकर भगवान्‌में लगा दे, उसीका नाम मच्चित्ता है, युक्तका मतलब है लगाकर वहीं ठहरा दे, फिर किसीके चिन्तनकी आवश्यकता नहीं है, प्रभुका जो दिव्य स्वरूप है, वहीं अपने मनको लगाकर टिका दे। मनरूपी भौंरेको भगवान्‌के मुखकमलपर टिका देना चाहिये। सदाके लिये स्थित कर देना चाहिये, फिर ध्यानमें ऐसा मस्त हो जाना चाहिये, मानो हमारा अभाव ही हो गया। भगवान्‌की जो माधुरी मूर्ति है, उसमें अपनेको ऐसा तन्मय कर देना चाहिये, जिसमें न देशका, न कालका, न अपने शरीरका ही ज्ञान रहे। यह सूत्ररूपसे बता दिया।

प्रेम और ज्ञान भगवान्‌का स्वरूप है। उसका आवाहन करना चाहिये, वह चिन्मयस्वरूप है। वही ज्ञानके रूपमें आता है।

शरीरके भीतर जो ज्ञानकी बड़ी भारी दीप्ति है, वह रोम-रोममें व्याप्त हो जाती है। उसके बाद बड़ा भारी प्रकाश दीखता है। सूर्यकी रोशनीसे भी बढ़कर प्रकाश और चन्द्रमाकी छायाकी तरह शीतल ऐसा प्रकाश नेत्र बंद करनेपर भी प्रतीत होता है। फिर जब मूर्तिमान् होकर दीखता है तो उसको किन शब्दोंमें कहा जाय। वे भगवान् कैसे हैं? धनुष-बाणके सहित भगवान् रामका स्वरूप सामने आ जाता है, मानो साक्षात् आनन्दके ही रूपमें प्रकट हो गये हैं। उस माधुरी मूर्तिका ध्यान होता है तो मनुष्य अपने-आपको भुला देता है। भगवान् चाहें तो सारे संसारका एक क्षणमें ध्यान लगा सकते हैं।

❑❑

मनुष्य-जीवनकी अमूल्यता

मनुष्यका जीवन बहुत मूल्यवान् है। एक क्षणका मूल्य लाख रुपये भी नहीं है। जो काम बहुत श्रेष्ठ समझें, उसी काममें समय बिताना चाहिये। जितना समय है उसको उच्चकोटिके काममें बिताना चाहिये। सबसे बढ़कर काम सारे दुःखोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति ही है। अतः उसी काममें सब समय बिताना चाहिये। हमारे मरनेपर हमारे दूसरे काम, सारी व्यवस्था दूसरे कर लेंगे, पर इस खास कामको कोई नहीं कर सकेगा। उत्तराधिकारी तो धन और मकानको सँभालेंगे। यह जितना बाकी रह जायगा, रह ही जायगा, इसलिये सबसे आवश्यक काम यही है, अन्यथा बहुत रोना पड़ेगा। नहीं करेंगे तो मूर्खता है। रोनेसे भी काम नहीं बनेगा, इसलिये जबतक शरीर ठीक है, तबतक इस कामको कर लेना चाहिये। एक क्षण बिना भगवत्-स्मरणके जाय तो पुत्रमरणके समान दुःख करना चाहिये। पुत्र तो फिर पैदा हो जाता है, पर यह जन्म फिर नहीं मिलेगा। करोड़ों जन्मोंमें यह मौका मिलता है। ऐसे मौकेको पाकर जो खो देता है, वह महामूर्ख है, मूर्खोंका सरदार है।

आयुरूपी धनकी रक्षा करनी चाहिये। लोभी धनको प्राणोंके समान समझता है, उसी तरह इस समयको हमें भी प्राणोंके समान समझना चाहिये। एक मिनट भी निकम्मा नहीं बीते, उत्तरोत्तर उच्च श्रेणीका कार्य करे। कल जो साधन हुआ, आज उससे भी श्रेष्ठ करे। काम वह करे जो आजतक नहीं किया यानी परमात्माकी प्राप्ति जिस तरहसे भी हो करनी चाहिये। अपनी सारी शक्ति इसी काममें लगा देनी चाहिये। उत्तरोत्तर बढ़ता रहे तो शीघ्र भगवान् मिल सकते हैं।

लाख रुपया भी एक नामकी कीमतसे आँका नहीं जा सकता।

प्रवचन—दिनांक २४/५/४०, रात्रि, स्वर्गाश्रम।

एक नामकी कीमत लाख रुपयेसे भी बढ़कर है, इसलिये भगवान्‌की प्राप्तिके कामको छोड़कर व्यर्थ समय नहीं बिताना चाहिये।

हमको यह विचार करना चाहिये कि हम यहाँ किसलिये आये हैं और क्या कर रहे हैं। शराबीकी तरह मोहमें पड़कर समय नहीं बिताना चाहिये। कितनी बड़ी कमाई हमारे हाथसे हटकर जा रही है। परमात्माकी प्राप्ति सुलभ होकर भी हमारे हाथसे जा रही है। यह कितने दुःखकी बात है। त्रिलोकीका राज्य भी भगवान्‌के एक नामके सामने कुछ नहीं है। नाम सत्य है। ऐसी हालतमें लाख काम छोड़कर भजन करे और भजनके बदलेमें कुछ नहीं चाहे।

शरीर, धन आदिके लिये ईश्वरसे या महात्मासे याचना नहीं करनी चाहिये। स्वप्नका त्रिलोकीका राज्य जागनेपर बेचो तो लोग पागल बतायेंगे और कोई पाँच पैसा भी नहीं देगा। इसी प्रकार परमात्मा सत्य वस्तु है, संसार असत् वस्तु है। परमात्माके सामने स्वप्नकी तरह इसकी कोई कीमत नहीं है। इन सब बातोंको सोचकर अपना समय बहुत ऊँचे काममें बिताना चाहिये। सबसे उत्तम बात यह है कि भगवान्‌की प्राप्ति जीवित रहते ही जी-तोड़ परिश्रम करके कर लेनी चाहिये। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाय, ऐसी चेष्टा रखनी चाहिये।

दुःखोंके संयोगका वियोग ही योग है। यह निश्चय कर्तव्य है और कटिबद्ध चित्तसे करना चाहिये। इसलिये एक क्षण भी इसे खाली न बैठने दे, खूब कसकर काम ले।

लौकिक हानि हो जाय तो कोई बात नहीं, पर यह हानि नहीं होनी चाहिये। जिनके निरन्तर भगवान्‌की स्मृति रहती है, उनके अन्त समयमें भगवान्‌की स्मृति होती है। अपनी जितनी शक्ति है, उतनी तो चेष्टा कर लेनी चाहिये। मरनेके बाद पता नहीं कैसी दशा होगी, इसलिये समय रहते अपना काम शीघ्र बना लेना चाहिये।

❑❑

त्याग, वैराग्य और उपरामता

प्रश्न—भगवत्प्राप्ति हो जानेके बाद उसमें धर्मी नहीं रहता। शरीर किस तरह चलता रहता है? इंजनके दृष्टान्तमें तो इंजन रुकता भी है।

उत्तर—मन-बुद्धि-अहंकारका एकदम अभाव नहीं हो जाता है। वह सबको ब्रह्म समझता है। उसमें अन्तःकरण और हृदय होता है। पाँच भूत और मन-बुद्धि भी उसमें रहते हैं। पेट्रोमेक्समें जैसे जली हुई राखकी जाली (मेन्टल) रहती है पर उसमें काम होता रहता है, बल्कि जलनेके बाद जैसा काम बनता है वैसा पहले नहीं होता।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ (गीता ४। १९)

जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।

इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिये समता बहुत सहायक है, अतः समताकी उपासना करे। यह समताकी बात कहीं पुस्तकमें भी नहीं देखी है, हो तो पता नहीं। भीतरके भावसे दृष्टि हो जाय और दृष्टिसे भीतरका भाव हो जाय एक ही बात है। जो बाहर समदृष्टि है, वह भीतर समदृष्टिके भावको तुरन्त ले आता है और भीतरकी दृष्टिसे बाहरकी दृष्टि हो जाती है।

बाहरकी समदृष्टिमें दूसरी चीजें नहीं दीखती हैं। दृष्टि समानभावसे फैली रहती है। कानोंके विषयमें भी ऐसी बात है कि उपेक्षा कर दे तो आवाज भी सुनायी नहीं पड़ती है।

प्रवचन—दिनांक २५/५/४०, सायंकाल, स्वर्गाश्रम।

प्रश्न—यदि कहीं हल्ला-गुल्ला हो रहा है तो उधरसे ध्यान हटाकर कैसे ध्यान लगायें?

उत्तर—एक आदमी दूसरी भाषामें बात कर रहा है तो हम उस ओर ध्यान नहीं देते। कोई दो आदमियोंकी बातें समझमें आ रही हैं और हम दो आदमी दूसरी बातें करने लगें, उनकी बातोंकी उपेक्षा करनेसे उनका सुनना छूट सकता है।

यही बात चमड़ीकी भी है, शीत-उष्णकी है। उपेक्षा कर देनेसे पहले कम मालूम होता है और बादमें बिलकुल भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार जिह्वाके लिये खट्टे-मीठेकी बात होती है। पता भी लगता है और पता लगनेपर भी स्वादमें राग-द्वेष नहीं होता। इसके कई भेद हैं—त्याग, वैराग्य, उपरामता और संयम (इन्द्रियोंको वशमें रखना)।

उपरामतामें स्वादका ज्ञान भी नहीं रहता और स्वादका ज्ञान हो गया तो भी राग-द्वेष नहीं हुआ, वह वैराग्य है और वशमें होना वह है कि हम चाहें तो देख सकते हैं और नहीं चाहें तो न देखें, नियन्त्रण होता है। राग-द्वेष नहीं होनेपर इन्द्रियाँ शीघ्र वशमें हो जाती हैं।

स्वरूपसे त्याग मामूली चीज है, पर वैराग्य मूल्यवान् है। ऐसा त्याग, वैराग्य, उपरामता और संयम चारों लाभकी चीजें हैं। सबसे नीचा दर्जा त्यागका है। मिथ्याचारीमें और साधकमें बहुत फर्क है। साधक तो चाहता है कि त्याग हो, परन्तु वस्तुएँ बार-बार वापस मनमें आ जाती हैं, पर मिथ्याचारी तो दंभी है। मन और इन्द्रियोंमें बाहरी संयम है, पर उपरामता और वैराग्य नहीं है, दो अलग-अलग चीजें हैं।

सिद्धिके लोभसे मनमें संयम होता है, यह हठकी अपेक्षा तो

ठीक है, पर यह उपरामता और वैराग्यसे बहुत नीची चीज है। उपरामता और वैराग्य तो साधनकी चीज है। इनके हो जानेपर नीचेकी छोटी-छोटी चीजें हो जानेमें कोई बुरी बात नहीं है। जैसे विष मारा हुआ साँप क्या कर सकता है? राग ही विष है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ (गीता २। ५७)

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है।

इसमें चैलेंज दे दिया है। विषयोंमें रस सूख जाय तो फिर मनको जीतनेकी माथापच्ची कौन करे। मन तो स्वाभाविक वशमें हो जायगा। नियमोंसे भी बहुत लाभ मिलता है।

जैसे आँखको बंद करते हैं, उसी प्रकार मनको बंद करना समझ ले तो बहुत लाभ है। जैसे वाणीको बंद कर लेनेसे भी वाणी बंद हो जाती है। आँख खोलनेमें और बंद करनेमें क्या जोर आता है। इस तरह संकल्परहित हो जाय। कोई कहे कि फिर संकल्प होवे तो? क्या आँख बंद करनेपर अपने-आप खुल सकती है?

आँख बन्द करना बाहरकी उपरामता है और मनके विषयोंसे उनको हटाना मनकी उपरामता है। इसमें वैराग्य, विषयोंको बुरा समझकर त्याग देना बहुत सहायक है।

मैं जिस समय उपरामताकी बहुत जोरदार बातें कह जाता हूँ, उस समय गीताके श्लोक और रामायणके दोहे-चौपाई भूल जाता हूँ। खास पहचानके आदमीको भी भूल जाता हूँ।

वैराग्य और उपरामताकी बातें होते-होते जब इनकी विशेषता हो जाती है, तब प्रयत्न करनेपर भी स्फुरणा नहीं होती है। आज

नहीं, बहुत वर्षोंसे ऐसा हो जाता है। मेरे लिये ही अनोखी बात है ऐसी बात नहीं, यह दूसरोंको भी हो जाता है।

एक और बात है, वैराग्य-उपरामताकी बात हो रही है। नेत्रोंमें, वाणीमें, मनमें और मुखमुद्रामें उपरामता है। उस समय सुननेवाला आदमी अपनेमें करना चाहे तो उसमें भी वैराग्य और उपरामता हो जायगी। वह यदि नहीं बोले तो जो वैराग्य-उपरामता चाहते हैं, उनपर उनके मौन रहनेपर भी परमाणु पहुँच जाते हैं।

कोई बिलकुल उपरामता और वैराग्यके शब्द भी नहीं समझे तो भी उसपर असर होगा। असर तो कुत्तेपर भी पड़ना चाहिये, युक्ति तो नहीं है। कुत्ता जैसे भौंकता है तो उसमें भौंकनेमें भी उपरामता आनी चाहिये। उपरामताके अन्तर्गत अहिंसा आ ही जाती है।

वैराग्य-उपरामतासे ध्यान ऊँची चीज है। जैसे मैं ध्यानमें बैठा हूँ और वास्तवमें मेरा ध्यान लग गया और तुम भी उसे देख रहे हो, तुम भी ध्यान लगाना चाहो और तुम भी कोशिश करो तो ध्यान लग सकता है। उपरामता और वैराग्य हो जानेपर ध्यान सुगमतासे लग सकता है।

वैराग्य तो हृदयसे पैदा हो तब हो। हर समय वैराग्य और उपरामतामें रहे। हमलोग बात-ही-बात करते हैं। वैराग्य धारण करनेकी चीज है। लोगोंकी व्यवस्था आदिकी जिम्मेवारी रखे ही नहीं, सांसारिक कामोंमें आवश्यकतानुसार सीमित समय ही दे। किसी समय सत्संगकी बात हो गयी, फिर अपना ध्यान करे। सोनेकी, खानेकी, पीनेकी, किसी बातकी परवाह नहीं रखे, जिस तरह हो जाय, साथ ही वैराग्य और उपरामता हो, हर समय वृत्तियाँ संसारसे उपराम रहें, इस प्रकार समय बितावे तो गृहस्थमें ही संन्यास है। आजकल वानप्रस्थ आश्रम तो एक प्रकारसे लुप्त

है। गृहस्थ होते हुए ही संन्यास ले ले, यानी गृहस्थ होता हुआ भी विरक्त रहे। वानप्रस्थ आश्रमका धर्म बड़ा कठिन है। इस आश्रममें ही पड़ा रहे। आश्रम बदलकर नियम पालन न करे तो भार है। जिस आश्रममें हो उसीमें अपना काम करे। साधु होकर असाधु हो जाय तो खराब है। साधु न होवे तो कोई बात नहीं है।

श्रीस्वयंज्योतिजी बड़े अच्छे साधु थे। वे किसीको शिष्य नहीं बनाते थे, कहते कि हम लायक नहीं हैं, हमारी सामर्थ्य नहीं है। साधु वैराग्य होनेसे ही शोभायमान होते हैं। चार चीजें हैं—संयम, त्याग, वैराग्य और उपरामता, चारों साधुओंके शोभा देती हैं। जिसमें ये चारों हों, वही साधु है।

त्याग—स्वरूपसे पदार्थोंका त्याग। जैसे संन्यासाश्रममें मान-बड़ाई, कंचन-कामिनीका त्याग।

संयम—इन्द्रिय, मन अपने वशमें रखना, इसका नाम संयम है।

वैराग्य—वस्तुओंमें जिसका राग नहीं है। संयम तो सकामी योगी भी कर सकते हैं। मन, इन्द्रियोंका संयम किये बिना समाधि नहीं होती। संयमका मतलब है वशमें कर लेना। इन्द्रियोंको वशमें कर लेना एक चीज है, विषयोंसे हटाना एक चीज है, उनमें रागका अभाव कर देना एक चीज है। भगवान्‌ने कहा है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ (गीता २।५९)

इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी आसक्ति भी परमात्माका साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।

उपरामता—जैसे कसाईकी दुकानकी ओर हमारी वृत्ति जाती

ही नहीं, इस प्रकारकी वृत्तिका नाम उपरामता है। हम स्वरूपसे विषयोंका त्याग कर देते हैं। वह त्याग है किन्तु विषयोंमें राग होनेके कारण उपरामता नहीं है। जिसके साथ रागका अभाव होकर स्वतः उपरति होती है, वह उपरामता है। रागका अभाव हो वह उपरति है, वैराग्ययुक्त उपरति है, वही उपरामता है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ (गीता २। ५८)

कछुआ सब ओरसे अपने अंगोंको जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियोंके विषयोंसे इन्द्रियोंको सब प्रकारसे हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा समझना चाहिये।

जिसके भीतर वैराग्य-उपरति दोनों हैं, त्याग उसके अन्तर्गत है, संयम होनेसे त्याग सहज हो सकता है, परन्तु उपरति दूसरी चीज है, त्यागसे ऊँची श्रेणी संयमकी है, इनसे ऊँची श्रेणी वैराग्यकी है। वैराग्यसे ऊँची श्रेणी उपरतिकी है। चारों ही उत्तम हैं।

स्थिर बुद्धिवाले पुरुषमें संयम और वैराग्य दोनों ही हैं। ये दो चीजें साथमें हो जायँगी तो उपरति चाहे जब कर लो। जैसे मेरी आँख खुली है, बंद करनेमें क्या देर लगी। जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, उसके लिये संयम क्या कठिन है। जिस तरह संसारमें वृत्तियाँ फिर रही हैं, बाँधनी है, उसके लिये एक मिनटका ही काम नहीं है। आँख खोली और मीची।

प्रश्न—वैराग्य-उपरामतामें बहुत अंतर है?

उत्तर—पदार्थसे रागका अभाव हो जानेका नाम वैराग्य है। उपरामता होनेसे वृत्तियाँ उस पदार्थमें जाती ही नहीं।

विषयोंमें सुखबुद्धि अज्ञानसे है, वास्तवमें सुख नहीं है। सुन्दरता तो मनकी मानी हुई है। कोई भी चीज सुन्दर नहीं है।

अपनी-अपनी पसन्द है। बालोंमें, वस्त्रोंमें सभी चीजोंमें अपनी-अपनी कल्पना है। सबकी अलग-अलग पसन्द है। इससे सिद्ध हुआ कि सुख कल्पनामें है, वास्तवमें नहीं है। वास्तवमें सुख तो परमात्मामें है। आगे जाकर उसका बहुत उत्तम फल है। जितने सांसारिक पदार्थ हैं, उनसे उस ज्ञानसागरके सुखकी एक बूँदके समान भी सुख नहीं है। चित्त उसमें टिक जाय, फिर असली वस्तु तो उसके बाद मिलती है।

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ (गीता २। ६५)

अन्त:करणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दु:खोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।

प्रश्न—उपरामतामें द्वेषका असर रहता है क्या?

उत्तर—उपरामतामें द्वेष नहीं रहता। मार्गमें चल रहे हैं, तिनके पड़े हैं, पत्थर पड़े हैं, उनसे राग-द्वेष नहीं है। वृत्तियाँ उस ओर बिना प्रयोजन नहीं गयीं, उसका नाम उपरामता है। ऐसे ही वह संसारके पदार्थोंको व्यर्थ समझ लेता है, इसलिये एक क्षण भी उसका मन उनकी ओर नहीं जाता।

राग-द्वेषरहित उन महात्माओंका विचरण तो एक खेल है। वैराग्यकी जितनी कमी है, वह उपरामता मूल्यवान् नहीं है। एक रागका अभाव होकर जो विस्मृति है, वही ऊँची श्रेणीकी उपरामता है। एक-एकका फल परमात्माकी प्राप्ति बताया है। सबको बलि देकर बचा हुआ भोजन अमृत भोजन है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गीता ३। १३)

यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपना शरीर-पोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ (गीता २।६५)

अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।

चित्तकी प्रसन्नता प्रसाद है। यज्ञसे बचा हुआ है वह प्रसाद है। खूब समझ लेना चाहिये—इन्द्रियाँ अग्नि हैं, विषय आहुति है। जो मनुष्य इस प्रकारका यज्ञ करते हैं, इन्द्रियोंके साथ विषयोंका संयोग तो होता है, परन्तु रागरहित होता है, वह इन्द्रियोंमें विषयोंकी आहुति है।

पाँचों इन्द्रियोंका संयोग तो है, किन्तु उनमें राग नहीं है। इस प्रकार जिसकी इन्द्रियाँ रागरहित विचरती हैं, वह रागरहित विचरना प्रसादको प्राप्त होना है। ऐसा जो वैराग्य है, वह यज्ञ है। कैसे करें—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ (गीता २।६४)

परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है।

यह यज्ञका विधि-विधान बता दिया। विषयोंके बीचमें अपनी जो आसक्ति है, वह भस्म हो जाती है। संयमरूपी अग्निमें इन्द्रियोंके हवनका तात्पर्य संयम लेना ही ठीक है।

कछुआवाला जो उदाहरण है वह इन्द्रियोंसे इन्द्रियोंकी वृत्तिको समेटकर बैठना है। विषयोंसे इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको समेटना यह उपरति हुई, इन्द्रियोंमें इन्द्रियोंका हवन नहीं है। इन्द्रियोंसे बाहरका ज्ञान नहीं होना यह इन्द्रियोंका हवन है। मनके द्वारा इन्द्रियोंको सब ओरसे समेटना उपरति है।

वह तीन प्रकारसे होता है—हठ, दम्भ और साधन।

दम्भ तो नरकमें ले जानेवाला है। हठपूर्वक त्याग करना बीचकी चीज है, वैराग्यपूर्वक त्याग श्रेष्ठ है। यह स्थिति साधकके लिये साधन है, महात्माओंमें स्वाभाविक होती है।

मान-बड़ाईमें द्वेषबुद्धि साधनमें सहायक है, आखिरमें घृणाबुद्धि है वह भी हटानी है। पुण्योंको हटानेकी आवश्यकता नहीं है, पापोंको हटानेकी आवश्यकता है। पुण्योंका हटाना तो एक मिनटका काम है, कठिनता नहीं है।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥ (गीता १८। १०)

जो मनुष्य अकुशल कर्मसे तो द्वेष नहीं करता और कुशल कर्ममें आसक्त नहीं होता—वह शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष संशयरहित, बुद्धिमान् और सच्चा त्यागी है।

अकुशल कर्ममें द्वेष न करनेवाला बनना है, कुशलमें आसक्ति है वह भी हटानी है, अकुशलमें द्वेष है वह भी हटाना है।

❑❑

गुप्त भजन एवं सेवाकी महत्ता

किसीने पूछा कि कर्म बड़ा है या भाव। इसका उत्तर है कि भाव ही बड़ा है। भाव अधिक हो और कर्म थोड़ा तो भी वह ऊँची श्रेणीकी चीज बन जाती है और भाव नीचा होनेपर कर्म बड़ा होनेपर भी नीची श्रेणी हो जाती है।

जैसे एक भाई खेती करता है, पर उसका भाव बहुत ऊँचा है कि विश्वको लाभ पहुँचाना है, परन्तु वह उद्देश्यका प्रकाश नहीं करता। वह लागत मूल्यपर बेचता है, लोग उसे अपने कम्पिटीशनसे बेचना समझते हैं, परन्तु भीतरसे उसका भाव लाभ पहुँचाना है। वह कह दे कि लोगोंका उपकार करता हूँ तो वह नीची श्रेणीका हो जाता है। वह कहता नहीं तो दूसरे भी इसी भाव बेचना शुरू कर देते हैं। वह कह देता तो लोग कम भावमें नहीं बेचते।

एक आदमी यज्ञ, तप इसलिये करता है कि मेरा शत्रु मर जाय, तो वह कर्म बहुत नीची श्रेणीका है। लोकदिखाऊ, दूसरेके अनिष्टके लिये या मान-बड़ाईके लिये करना नीची श्रेणीका है।

एक भक्त था वह गुप्तरूपसे भजन करता था। घरवालोंको किसीको भी इसका पता नहीं था। लोग कहते भजन नहीं करते हो तो वह हँस देता। वह जानता था कि भगवान्‌को ही प्रसन्न करना है। लोगोंसे कहनेसे क्या लाभ है। एक बार स्वप्नमें वे राम-राम कहने लगे तो सब लोगोंने बड़ी खुशी मनायी। उसने पूछा यह क्या हो रहा है तो कहा आप स्वप्नमें राम-राम कर रहे थे। उसने कहा मेरे मुँहसे राम-राम निकल गया, इतना कहकर वह मर गया कि प्रकट हो गया तो अब जीकर क्या करें। भजन गुप्त-से-गुप्त करें।

प्रवचन—दिनांक २५/५/४०, रात्रि, स्वर्गाश्रम।

मनुष्यपर यदि भारी-से-भारी आपत्ति आ जाय, फिर भी सत्यका, धर्मका त्याग नहीं करे तो धर्म भी उसका त्याग नहीं करेगा। मरनेके बाद धर्म ही साथ जाता है। ध्रुव, प्रह्लादपर कितनी आपत्तियाँ पड़ीं, पर उन्होंने धर्मका त्याग नहीं किया। प्रह्लादके पुत्र विरोचन एवं सुधन्वाकी कथा देखें, प्रह्लादने कितना उत्तम न्याय किया।

धर्मपालनमें महाराज युधिष्ठिर बहुत बढ़कर हुए। उनमें दया, क्षमा, धैर्य, शान्ति, सत्यता ये सब थे। इसीसे इनका नाम धर्मराज पड़ा। जब उनके सब भाई मर गये और वे इसी देहसे स्वर्गको गये, तब इन्द्रने कहा कि आप इस नदीमें स्नान करके इस शरीरको बदल लीजिये, क्योंकि देवता इस शरीरसे घृणा करते हैं तो स्नान कर लिया। वहाँ दुर्योधनको देखा तो पूछा कि हमारे भाई कहाँ हैं मुझे वहीं ले चलो। ले गये तो रास्ता बड़ा भयानक था। पूछनेपर पता चला कि यह नरक है तो वहीं ठहर गये। द्रौपदी, भीमसेन, नकुल, अर्जुन सबकी आवाज आयी कि हम बहुत दुःखी हैं, आप यहाँ ठहरिये। हमें आपसे बड़ा सुख मिल रहा है। युधिष्ठिरने सोचा यह क्या बात है, देवताओंके यहाँ न्याय नहीं है। देवताओंने वापस चलनेको कहा तो उन्होंने कहा कि मैं नहीं जाऊँगा। इतनेमें सारी माया मिट गयी और देखा कि केवल देवराज इन्द्र खड़े हैं। उन्होंने कहा कि आपके भाई नरकके योग्य नहीं हैं। अश्वत्थामाकी मृत्युके बहाने आपने छलसे झूठ कहा था, इसलिये हमने भी आपको छलसे नरक दिखला दिया।

दुर्योधनको स्वर्ग इसलिये मिला कि वह युद्धमें लड़कर मरा है। युधिष्ठिरको दिव्य दृष्टि दी, उन्होंने देखा कि द्रौपदी तो साक्षात् लक्ष्मी बनकर भगवान्की सेवा कर रही है और भीमसेन

वायु देवताके पास, नकुल–सहदेव अश्विनीकुमारोंके पास बैठे हैं। अर्जुन भगवान्‌के पास बैठा है। जो जिसका अंश है वह उसी जगह चले गये। युधिष्ठिर फिर धर्मराजके यहाँ चले गये। यहाँ युधिष्ठिरकी दया देखनी चाहिये कि उन्होंने भाइयोंके लिये दुःख उठाना स्वीकार कर लिया। अतः हमको भी ऐसे मौकेपर दुःख उठानेके लिये तैयार रहना चाहिये।

एक दिनकी बात है, धृतराष्ट्रको भीमसेनने ताना मार दिया, तब उन्होंने तीर्थोंमें जाकर तप करनेका विचार किया और विदुरसे कहा तो उन्होंने कहा ठीक है। युधिष्ठिर आये, उनके सामने वनमें जानेकी बात कही। उन्होंने मना किया और सेवामें त्रुटि समझकर बहुत पश्चात्ताप किया। अन्ततः विदुरजीने समझाया कि इन्हें जाने दो, क्योंकि वनमें जाकर प्राण त्याग करना उत्तम है। युधिष्ठिरने बात मान ली, धृतराष्ट्रके मनमें आया कि जाते समय दिल खोलकर खूब दान करूँ। युधिष्ठिर, अर्जुनने खूब उदारताका व्यवहार किया। कहा मेरी सब वस्तुएँ तन, मन, धनपर उनका पूरा अधिकार है। जाते समय उन्होंने खूब दान–पुण्य किया, लोगोंको खूब धन दिया। जाते समय प्रजासे क्षमा माँगी। गान्धारीकी सेवाके लिये कुन्ती साथमें गयी। संजय धृतराष्ट्रकी सेवामें गया। वनमें वेदव्यासजीने गान्धारीसे पूछा कि तुम्हारा दुःख किस प्रकार दूर हो। उन्होंने कहा कि मुझे मेरे पुत्रोंसे मिला दो। वेदव्यासजीने अठारह अक्षौहिणी सेनाको बुला दिया, गंगाजीमें प्रवेश करके आवाहन किया। जलमें बड़ा शब्द हुआ, फिर हाथी, घोड़े सब वहीं निकले और अठारह अक्षौहिणी सेनाने पड़ाव डाल दिया। सबसे कह दिया गया कि यह सेना रातभर रहेगी, जिनको मिलना हो मिल लो। घोषणा कर दी कि

अब आगे कोई नहीं रोना। कोई साथ जाना चाहे तो गंगामें गोता लगा ले, वह उसके साथ वहीं चला जायगा। रातभर सब मिले। जिसने गोता लगाया वह उनके साथ विमानमें बैठकर चला गया, गांधारी आदि नहीं गये।

जनमेजयको विश्वास नहीं हुआ। कहा कि मेरे पिताको बुला दें, वही यज्ञ पूरा करें तो वेदव्यासजीने वैसा ही करके दिखला दिया। यह महाभारत आश्रमवासीपर्वकी बात है।

कुन्तीकी तरफ देखो। जब पाण्डव वनमें गये, तब बेचारी कुन्ती रोती रही। धृतराष्ट्र आदि किसीने रोनेपर ध्यान नहीं दिया। वही कुन्ती जब राजमाता हो गयी, तब वनमें सेवा करनेके लिये साथ गयी। हरेक माता-बहिनोंसे यही प्रार्थना है कि जो तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव करे, उसके साथ ऐसा उत्तम बर्ताव करके दिखला दे।

एक बार कुन्तीने भगवान्‌के कहनेपर यह वर माँगा कि हमें सदैव दुःख मिलता रहे जिससे आपकी स्मृति न छूटे—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

कुन्ती सत्यवादी थी, दूसरेकी संकटमें रक्षा करनेवाली थी। पाण्डवलोग एकचक्रा नगरीमें छिपकर रहते थे। उस नगरके बाहर बकासुर नामक एक राक्षस रहता था। उसके लिये एक आदमी तथा एक गाड़ी बाकला दिया जाता था। जिस घरमें ये रहते थे, एक दिन उसीकी पारी आ गयी। राजाके सिपाहीने आकर बता दिया। ब्राह्मणने कहा मैं जाऊँगा, ब्राह्मणीने कहा मैं जाऊँगी। उनके एक लड़का, एक लड़की थी, उन्होंने कहा हमें भेज दो। कुन्तीने उनके पास जाकर सारी बात पूछी और कहा मेरे पाँच लड़के हैं, एकको भेज दूँगी। भीमको कहा, वह बड़ा

प्रसन्न हुआ। युधिष्ठिर आदिने भी कहा पर माँने भीमसेनको वहाँ भेजा। वहाँ राक्षससे खूब लड़ाई हुई। आखिर भीमसेनने राक्षसको पछाड़कर मार डाला। यहाँ यह देखना चाहिये कि कुन्तीने मृत्युके मुखमें अपने बेटेको भेज दिया। हमारी माताएँ तो किसी बीमारकी सेवामें भी नहीं जाने देतीं।

सुमित्राने लक्ष्मणको रामकी सेवामें भेज दिया तो हमें भी सबको राम समझकर अपनेको सेवामें देना चाहिये। हमारा जीवन एक दिन नष्ट होगा ही, मरनेके बाद न तो इसकी हड्डी काममें आयेगी, न चमड़ा काममें आयेगा, अतः दूसरेकी सेवामें सब कुछ लगा दें। धर्म और ईश्वरके लिये मरनेको तैयार रहना चाहिये। ***'जो सिर साटे हरि मिले तो लीजे पुनि दौर।'***

यही मुख्य काम है नहीं तो एक दिन शरीर तो भस्मीभूत होना ही है।

❑❑

सत्संगसे लाभ और सेवा किसीसे स्वीकार न करें

प्रश्न—सत्संगमें रुचि कैसे बढ़े?

उत्तर—सत्संगका गुण, प्रभाव, महिमा, रहस्य जाननेसे।

प्रश्न—समझमें कैसे आवे?

उत्तर—भजन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर समझमें आ सकती है।

प्रश्न—सत्संग किस प्रकार करना चाहिये, जिससे सत्संगका ज्यादा लाभ हो?

उत्तर—सत्संगकी बातोंको जितना अधिक आदर देंगे, उतना ही अधिक लाभ होगा। सत्संगकी बातोंका पालन करें। मनन करना भी ठीक है, पर पालन करनेसे अधिक लाभ है। प्रेमसे सुनें। पाँच आदमी बैठकर विवेचन करें, काममें लायें। भगवान्‌के बताये हुए सभी साधन ठीक हैं, पर मूर्खताके कारण करनेमें तत्परता नहीं है। मरनेके बाद क्या दशा होगी, यह भी नहीं सोचते हैं।

विचारनेपर समझमें आता है कि भगवान्‌का भजन बड़ी अच्छी चीज है। हेतुरहित उपकार बड़ी अच्छी चीज है। यह समझते हैं पर होता नहीं, क्रियारूपमें नहीं आता। मार्ग तो दीखता है, पर उसके अनुसार चलते नहीं बनता।

एक आदमीके पास लाख रुपये हैं, वैद्य, डॉक्टर कह दे कि अब नहीं बचेगा। वैसी दशामें भी मनुष्य दान नहीं करता। मान-बड़ाईको बुरी समझता है, पर प्राप्त होनेपर उसका त्याग नहीं करे तो असली समझ नहीं आयी। लोभी रुपयोंसे जैसे प्रसन्न होता है, इसी तरह सद्‌गुणोंको प्राप्त करके प्रसन्न होवे।

यह सब सत्संगकी बातें सुनता रहे, सुनता रहे, यह बातें खूब भर जायँ और एकदम साधनमें जोश आ जाय। बार-बार सत्संग सुनता रहे और मनमें अन्दर भाव इकट्ठे होते रहें। फिर सुनते-

---

प्रवचन—दिनांक २८/५/४०, सायंकाल, स्वर्गाश्रम।

सुनते जोश आ जाय। मन बुरे उदाहरण बहुत लेता है, लाभ होनेवाले उदाहरण नहीं लेता, भीतर-ही-भीतर भाव बढ़ता रहे, जोश भरता रहे, फिर एक साथ क्रिया करे।

एक वृत्ति बहुत लाभकी वस्तु है, पर वृत्ति बदलनेमें भी बुराई नहीं है, क्योंकि एक ही बातसे मन उकता जाता है। एक ही साधन करनेमें जैसे जप या ध्यान ही करे तो मन कहता है कि चल बहुत देर हुई।

अच्छे आदमीको लोभ देकर, घूस देकर गिरा दिया जाता है। मैंने कई अच्छे साधकोंको देखा है कि उनके शिष्योंने उनको गिरा दिया। अच्छे साधक पुरुषोंकी शरीरकी सेवा आदि की जाती है, वह करवानेवालेके लिये प्रत्यक्षमें घातक होती है। वह समझता है कि सेवा करवाना बुरा है, पर प्रत्यक्षमें जो आराम मिलता है, वह आराम उससे वह सेवा स्वीकार करवा लेता है।

मैं तो वक्ताका, श्रोताका दोनोंका लाभ समझता हूँ, पर वक्ताको दोषोंसे—मान-बड़ाई और सेवा करानेसे सावधान रहना चाहिये।

सेवा करनेवाले जो साधु महात्माको आराम पहुँचानेकी चेष्टा करते हैं, उनका भाव तो ठीक ही होता है। उनको तो नहीं रोका जा सकता। पर जो करवाता है, उसे ही रोका जा सकता है। मन सुख चाहता है। प्रत्यक्ष सुखको पकड़ता है, इसीलिये सेवा करवाता है। दूसरा बुरा मान जायगा—इस बातपर भी ध्यान न दे, सेवा न करावे।

नीति यही रखे कि दबकर सेवा करवाना स्वीकार न करे, चाहे बाप ही क्यों न हो, पर उपरामता और वैराग्यमें कमी न आने दे। कमी आनेवालोंका तो विरोधी ही रहे।

किसीके संकोचमें पड़कर त्यागका आदर्श नीचा न करे। किसी पुरुषका बुराईकी ओर मन चला गया तो इस बातपर जोर देवे कि मर भी जायँगे तो भी बुरा काम नहीं करेंगे।

पापसे जिद्द करके भी हटना अच्छा ही है, अपने स्टैण्डर्डको न गिरने दे। उसे कायम रख लिया तो हम जीत गये।

पैर दबाना और हवा करना, क्रियामें कोई महत्त्व नहीं है, पर उनको जिससे सन्तोष हो, सुख हो वही करे। श्रद्धा हो तो उसे सेवा करनेके कालमें बहुत ही आनन्द आयेगा, हम उस आनन्दको नहीं जानते।

पुण्डरीक अपना कर्तव्य समझकर माँ-बापकी सेवा कर रहा था, उसी समय भगवान् भी आ गये। उसने उनकी भी परवाह नहीं की।

अपने कर्ममें रत हो जाओ। स्वार्थरहित होकर कर्तव्य समझकर लग जाओ, उससे ही काम बन जायगा।

परमात्मा समझकर करनेवाली क्रिया ही मुक्ति देनेवाली है। कर्तव्यपालन करनेवाली आसक्ति बुरी नहीं है, स्वार्थ ही बुरा है। क्रियामें आसक्ति होना भी बुरा है।

सबको भगवान् समझकर सेवा करने लगे तो बहुत शीघ्र भगवान् मिल जायँ। कथामें जो आनन्द आता है, उसकी अपेक्षा पिताकी सेवा करना अच्छी बात है।

मालिककी रुचिमें रुचि मुक्तिको देनेवाली है, अपनी रुचि नहीं। उसकी रुचिके अनुसार करनेवालेको प्रत्यक्षमें आनन्द होता है। कर्तव्यपालन ही धर्म है और इसीमें आनन्द आ सकता है।

साक्षात् भगवान् आ जायँ, उनकी सेवामें हमें कितना आनन्द होगा, जिसकी कोई सीमा नहीं। वही भाव स्त्री पतिमें, पुत्र पिता-माताकी सेवामें कर ले। श्रद्धा होनेपर वही आनन्द होना चाहिये।

जो बात अर्जुनके मनके विपरीत होती, उसे ही भगवान् कहते। उन्होंने अर्जुनको भीष्मपितामहको मारनेके लिये कहा, अर्जुनने उन्हें मार दिया।

❑❑

निष्कामभावकी महिमा

मुझे तो वैराग्यकी बातें अच्छी लगती हैं। वैराग्य चाहे मत हो, किन्तु बात वैराग्यकी अच्छी लगती है। मनमें ऐसी बात आनी चाहिये कि सारा समय वैराग्यमें ही बितावें। बात उलटी हो रही है। अच्छे-अच्छे आदमियोंकी प्रवृत्तिमें रुचि हो रही है। जब-जब वैराग्य होता है तब स्वतः ही ध्यान होने लगता है, यह मेरे अनुभवकी बात है। लोग कहें कि हमारा ध्यान नहीं लगता है। उनकी बात सुनकर मुझे हँसी आती है। मैं तो कहता हूँ कि वैराग्यका नशा रहना चाहिये, फिर किसी युक्तिकी आवश्यकता नहीं। वैराग्य न हो तो सौ युक्ति लड़ाओ, कोई युक्ति काम नहीं आयेगी। एकदम ध्यानमें मस्त रहे, बोले तो ध्यानमें, चले तो ध्यानमें, ध्यानके बराबर कोई आनन्द नहीं है। जप करो तो ध्यानके लिये, और तो सब साधन हैं, ध्यान साध्य है। औरोंके लिये तो ध्यान साधन है मेरे लिये ध्यान साध्य है। ध्यान ही निरन्तर रहे। ध्यानमें कोई बाधा नहीं आनी चाहिये। जबतक ध्यान करनेकी चेष्टा है, तबतक साधन है, जब ध्यान अपने-आप ही हो जाय तब साध्य है। परमात्माका ध्यान ऐसे हो जाय कि छुटाये न छूटे, वही साध्य है। गोला बरसे, पत्थर बरसे, बरसता रहे, ध्यानमें मस्त रहे।

ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥ (गीता १८। ५२)

दृढ़ वैराग्यका आश्रय लेनेवाला तथा निरन्तर ध्यानयोगके परायण रहनेवाला पुरुष सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित होनेका पात्र होता है।

नित्य ध्यान करे, वैराग्य और उपरामता ध्यानके लिये आसरा है। वैराग्यका मतलब है रागका अभाव।

प्रवचन—दिनांक १/५/४०, सायंकाल, स्वर्गाश्रम।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

इतना ही पर्याप्त है। कैसी स्वाभाविक शान्ति है।

प्रश्न—बारहवें अध्यायमें ध्यानसे कर्मफलके त्यागको श्रेष्ठ कैसे कहा?

उत्तर—अपने-अपने स्थानमें सब बड़े हैं। बड़ा तो कर्मफलका त्याग ही है। अपनी रुचि ध्यानमें है, भगवान् तो सब प्रकारकी बात कहते हैं।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥ (गीता १३। २४)

उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।

भगवान् यह भी बताते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्‍गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ (गीता ६। ४७)

सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

स्वार्थरहित क्रिया है, उसमें जो त्याग है वही श्रेष्ठ है। ध्यानमें त्याग नहीं है, इसलिये ध्यानसे कर्मफलका त्याग श्रेष्ठ

बतलाया है। छोटे-से-छोटा कर्म है, उसमें यदि फलका त्याग है तो वह बड़ी-से-बड़ी क्रिया, जिसमें फलका त्याग नहीं है, उससे ऊँची है। फलको नहीं चाहता हुआ कर्म करता है, वही संन्यासी और योगी है।

योगदर्शनमें बतलाया है—ध्यानसे सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है तथा समाधि होती है। सभी काम ध्यानसे होते हैं।

निष्कामभावसे की हुई खेती भी ऊँची-से-ऊँची है और भजन-ध्यान यदि निष्काम नहीं है तो उस खेती आदिसे नीचा है। कोई भी कर्म करे, फलत्यागसहित करे। कर्मफलका त्याग ध्यानसे श्रेष्ठ है। एक ओर तो क्रिया है और एक ओर भाव है, इनमें भाव ऊँचा है। क्रिया छोटी-से-छोटी उसमें स्वार्थके त्यागका भाव है तो वह ऊँची है। कर्म ध्यानसे बड़ा नहीं है। उसमें जो त्याग है वह श्रेष्ठ है।

एक सद्‌गुण-सम्पन्न ब्राह्मण है, किन्तु उसमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है, एक चाण्डाल है उसमें भक्ति है तो वह ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है। यह बात भागवतमें बतलायी है।

निष्कामकर्मके दो भेद हैं—भगवदर्थ, फलासक्तिका त्याग। फल दोनोंका एक ही है। चारों ही निष्काम हैं—

१. मय्येव मन आधत्स्व, २. अभ्यासयोगेन, ३. मदर्थ, ४. सर्वकर्मफलत्याग।

सारे योगियोंमें तो वह श्रेष्ठ है जो भगवान्‌में मन लगाता है, चारों ही निष्कामकर्मके भेद हैं।

❑❑

घरमें त्यागका व्यवहार एवं अतिथिसेवाकी महिमा

माताओं, बहनों और पुरुषोंके लिये सबसे बढ़कर भगवान्‌का भजन है। वर्तमानमें हमारे घरोंमें स्त्रियोंमें शिक्षा कम है। इससे कलह अधिक है। हम यहाँ देखते हैं कि एक मकानमें बीस पुरुषोंको तो ठहरा देते हैं, किन्तु एक मकानमें यदि पाँच स्त्रियोंको ठहरा देते हैं तो कठिनता आ जाती है। घरमें भाई-भाई दस रहते हों तो कोई बात नहीं, स्त्रियाँ पाँच भी हों तो कलह होने लगता है। कलह जहाँ है, वहाँ कलियुगका निवास है, जहाँ 'स' और 'त' होते हैं वहाँ मंगल है। सतयुग 'स' और 'त' से बनता है। कलियुग 'क' और 'ल' से बनता है, इसलिये कलह बहुत खराब है। अतः माताओंको चाहिये कि कलह न करें, कलह होनेसे क्लेश आता है। इसलिये हमको चाहिये कि कलह हो उसी समय उसको नष्ट कर डालें। कलह होता है क्रोधसे, इसलिये क्रोध ही न करे। क्रोध सारे अनर्थोंका मूल है, इसलिये हर एक माताओंको क्रोध नहीं करना चाहिये। जहाँ क्रोध आता है, वह उस स्थानको जलाता है। यह आग है। आग लग गयी, जोरकी हवा चली तो आसपासके सब घर जल जाते हैं। जैसे एक कुटियाके आग लगी, हवा चली तो आसपासकी सब कुटिया जल जाती है, इसी प्रकार किसीको क्रोध आ गया, जोरसे बात कही, बस दूसरेको भी उसकी बात सुननेसे क्रोध आता है, फिर कलह फैल जाता है। आगके पतंगे उड़ते हैं। उसी तरह क्रोधके वचन ही पतंगे हैं। अग्निकी चिनगारियाँ जैसे उड़ती हैं, उसी तरह सब क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं। जब आग लग गयी अर्थात् क्रोध उत्पन्न हुआ तो आग बुझानेके लिये धूल और

प्रवचन—दिनांक १३/५/४०, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

जल डालते हैं, इसी तरह क्रोध हो तो धूल, जल डालना चाहिये। धूल, जल डालनेसे तो क्रोध और बढ़ेगा ही, परन्तु क्रोधके लायक ही धूल, जल डालना चाहिये। अन्तमें कहते हैं कि जो कुछ हुआ धूल दो। शब्द तो यही है, परन्तु यह धूल नहीं है, इसका तात्पर्य है क्षमा कर दो।

जल क्या है? शान्तिके वचन ही जल है। शान्तिके वचन बोलना चाहिये। उसकी सारी बात स्वीकार कर ले, उसके अनुकूल वचन कहे। इससे वह शान्त हो जाता है। ऐसा भी कोई उपाय है, जिससे क्रोध हो ही नहीं? ऐसा उपाय ईश्वरका भजन है। जिस समय क्रोध होता है उस समय क्या ईश्वरकी भक्ति सुहाती है? ईश्वरका भक्त होता है उसके तो क्रोध आता ही नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं—

बसहि भगति मनि जेहि उर माहीं। खल कामादि निकट नहिं जाहीं॥

बात तो हम भी पढ़ते हैं, परन्तु क्रोध तो हमारे भी आता है। भगवान् कहते हैं नहीं आना चाहिये। अच्छा आप ईश्वरके भक्त हैं क्या? हाँ थोड़े बहुत तो हैं ही। तो थोड़ा आता होगा। पूरा भक्त होता है, उसको बिलकुल क्रोध नहीं आता। भगवान्के भक्त तो भगवान्के विधानमें सन्तोष करते हैं। अपने प्रारब्धका भोग तीन प्रकारसे होता है। स्वेच्छा, परेच्छा और अनिच्छा। स्वेच्छासे जो कार्य किया जाता है उसको स्वेच्छा प्रारब्ध कहते हैं। यदि भूकम्प हो जाय तो उसको अनिच्छा प्रारब्ध कहते हैं। भगवान्ने ही तो दिया। इसी प्रकार कोई गाली देता है। यह क्यों हो रहा है? हमारे पापका ही फल तो भुगताया जा रहा है। कौन भुगताता है? भगवान्। भगवान्का भक्त क्या क्रोध करेगा? हमारे मनके प्रतिकूल जो कार्यवाही होती है, वह हमारे प्रारब्धका फल तथा भगवान्का विधान है। मनके विपरीतमें क्रोध होता है। मनके विपरीत होता है, किन्तु वह ईश्वरका विधान

हमारे कर्मोंका फल है। क्रोधका कार्य बन जाय तो भी क्रोध नहीं करना चाहिये। यदि रोयेंगे तो क्या लाभ होगा। भगवान् समझेंगे इसको मेरा विश्वास नहीं है। यह बात हमारे समझमें आ जाय तो हमें क्रोध नहीं आ सकता। अपने तो क्रोध करे ही नहीं। दूसरेको हो तो अपना ही अपराध माने। उससे क्षमा माँगनी चाहिये। कहे आपको क्रोध आया है, यह मेरा ही अपराध है। भगवान्‌के भक्त तो अपना अपराध मानते हैं। अपनेको क्रोध आता है, तब भी अपना ही दोष स्वीकार करते हैं। दूसरेको आता है, तब भी अपना ही दोष स्वीकार करते हैं। भगवान् कहते हैं—

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ (गीता १२।१४)

जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ (गीता १२।१५)

जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता; तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है—वह भक्त मुझको प्रिय है।

ऐसा जो पुरुष है, वह मेरा प्रेमी है। दूसरेको क्रोध आता है, उसमें मैं ही हेतु हूँ, यह समझना चाहिये। मुझको क्रोध आ गया तो समझना चाहिये कि हमें भगवान्‌में विश्वास कहाँ है? योगी तो हर समय सन्तुष्ट रहता है।

यदि हर समय सन्तोष नहीं तो तुम कैसे भक्त हुए? भगवान्‌का भक्त समझता है कि जो कुछ भी हमारे प्रतिकूल होता है, हमारे पापोंका फल है, ईश्वर भुगता रहे हैं, ताकि भविष्यमें

हम इस तरह न करें। हमको दण्ड मिल रहा है, यह हमारे ही अपराधोंका फल है। भोगना तो मूर्खोंको भी पड़ता है, वे रोकर भोगते हैं। हम भक्त हैं, इसलिये हँसते हुए भोगना चाहिये।

प्रभुकी कृपासे हम जी रहे हैं। जो कुछ हमारे मनके प्रतिकूल हो रहा है, वह हमारे पापोंका फल है। ईश्वर भुगता रहे हैं। इस प्रकार करेंगे तो भगवान् प्रसन्न होंगे। प्रह्लादपर कितने आक्रमण हुए, वह कभी बिगड़ा क्या? हँसते-हँसते सब सहा तो भगवान् प्रकट हो गये। भगवान्‌के भक्तोंके लक्षणोंको गीता १२। १३ से २० तक देखना चाहिये। उदाहरण प्रह्लादका देख लीजिये।

आपपर कोई क्रोध करता है, आप दण्ड देनेकी शक्ति होते हुए भी सह लेते हैं तो क्रोध करनेवाला आपसे क्षमा माँगेगा।

यदि आपपर कोई क्रोध करता है, आप उस समय पानी-पानी हो जायँ, उसे ऐसा कहें, मैं बड़ा नालायक हूँ, मेरा अपराध है, इसीलिये तो आप क्रोध कर रहे हैं। वह आपके ऐसा कहते ही शान्त हो जाता है। आपके मनके प्रतिकूल काम हो जाय, उस समय आप सोचें कि यह तो हमारे प्रारब्धसे हो गया। क्रोध करे ही नहीं। यदि वह क्षमा माँगने आये तो कहे कि आप तो निमित्त बन गये हैं। हमारे ही कर्मोंका फल है। आप विचार बिलकुल मत करिये, आपके ऐसा कहनेसे ही वह बड़ा प्रसन्न होगा।

प्रथम तो हर एक माताको अपना सुधार करना चाहिये, यदि आपमें काम-क्रोध बैठे हैं तो ये साक्षात् नरकके द्वार हैं। गीतामें काम-क्रोधको नरकका द्वार बतलाया है।

एक गृहस्थ जातिका वैश्य था। उसके घरमें स्त्रियोंमें कलह चलती थी। घरके लोग बड़े दुःखी थे। उस घरमें एक भले घरकी बहू आ गयी। उसके घरवाले सब भले पुरुष थे। इस घरमें साक्षात् कलियुग विराजमान हो रहा था। उसने सोचा मुझे यहाँ कहाँ ढकेल

दिया। वह शिक्षित थी, उसने थोड़ी देर बाद सोचा कि भगवान्‌ने मुझे सेवा करनेके लिये भेजा है। वह देखती इस घरमें रोज लड़ाई होती है, यह नरकमें डालनेवाली है। उसके परिवारमें चार जेठानी, चार जेठ, एक सास, एक श्वशुर, दो ननद, चार बच्चे—इस प्रकार कुल बीस आदमी थे। वहाँ रसोई बनानेकी अलग-अलग पारी थी। किसीके ज्वर हो गया या कोई कष्ट हो गया, वह किसी दूसरेको कहती तो कोई सहयोग नहीं देती, बल्कि झगड़ा करती, अन्ततः विवश होकर रसोई बनानी पड़ती। वह सुशिक्षित थी, उसने एक दिन सुबह आकर जेठानीसे कहा कि एक समयकी रसोई मुझे दे दें। जेठानीने कहा घबड़ाओ मत, तुम्हारी भी पारी हो जायगी। अभी नयी आयी हो। उसके बार-बार आग्रह करने और उसकी मीठी बातोंसे प्रसन्न होकर उसने अपनी पारीकी रसोई उसे दे दी। इसी प्रकार उसने सबसे रसोई ले ली। सासको यह बात मालूम पड़ गयी। उसने कहा तू इतनी रसोई क्यों बनाती है। उसने कहा मेरे पिताने सिखाया है कि यही सच्चा धन है। आप बाधा मत डालिये। थोड़े दिन बाद घरमें धन बढ़ गया तो सबको श्वशुरने साड़ी आदि लाकर दी, नयी बहूने सब जेठानियोंको, ननदको जाकर दे दी, कहा कि मेरे पास तो पीहरसे लायी हुई बहुत पड़ी है। वह ही नहीं फटेगी। आपके लड़कियाँ हैं, सब काम आ जायगी। प्रेमसे प्रार्थना करके चारों जेठानियों और ननदके पास जाकर साड़ी छोड़ आयी। सासको पता लगा तो उसने कहा कि तुमने सब बाँट दिया। उसने कहा मेरा क्या था, सब आपका ही था। मुझे तो पिताजीने सिखलाया था पूर भेला मत करिये यानी कपड़ा आदि इकट्ठा मत करना। इकट्ठा करेगी तो मन इसमें अटक जायगा। दूसरोंको देकर शान्ति मिलेगी। वह सच्चा धन है। मरनेके बाद वह साथ जायगा। वस्त्र साथमें नहीं जायँगे, यही असली धन है।

थोड़े दिनमें उस घरमें लाखों रुपये बढ़ गये, उसके श्वशुरने एक-एक सेट गहना सबको बनवा दिया। वह ननदके पास जाकर उसे समझाकर गहना दे आयी, फिर जेठानियोंको भी समझाकर बचा हुआ गहना दे दिया। पूछनेपर कहा कि मेरे पिताने यह बात कही थी कि गहनोंमें मन रह जायगा तो यह नरकको देनेवाला है। असली धन इकट्ठा करना चाहिये। आप इसमें बाधा मत डालें। सासके पूछनेपर भी उसने कहा कि मरनेपर यह गहना कुछ काम नहीं देगा। सेवा करके दूसरोंको अपना सब अर्पण कर दे, उसका फल मुक्ति है और सब नकली धन है। जबतक देहमें प्राण है तबतक बुद्धिमान् पुरुषको यह कर लेना चाहिये। यह बात मेरे पिताने सिखलायी है। सासने सोचा बात तो ठीक है, उसने भी अपना दो-दो गहना, दो-दो कपड़ा लेकर सब बहुओंको दे दिया।

छोटी बहू शामकी रसोईके लिये भी जाकर बैठ गयी कि मैं करूँगी। सास आयी, पूछा कि यह क्या कर रही है? शामकी रसोई तो मैं करूँगी। तुम अकेली ही सारा धन इकट्ठा करती हो। हमें मुक्ति नहीं चाहिये क्या? उसकी बहुओंने पूछा क्या बात है, उसने कहा छोटी बहू ठग है, चतुर है, सेवा करके पुण्य लूटती है। वह सेवा करके हमलोगोंका किया हुआ तप ले लेती है। सब बहुओंने सोचा कि बात तो ठीक है। अब घरमें लड़ाई हो, वह कहे मैं रसोई बनाऊँगी, वह कहे मैं भोजन बनाऊँगी। तब उस बहूने श्वशुरसे कहकर गेहूँ मँगाकर पीसना शुरू किया। सासने पूछा कि क्या कर रही है? उसने कहा कि भोजन बनाना तो मेरे हिस्से आता नहीं है। गेहूँ पीसनेवाला काम ठीक है। इससे और जल्दी कल्याण होता है। दूसरे दिन सास जल्दी उठकर चक्की चलाने लगी। अब सब बहुओंने भी चक्की चलानेवाला काम शुरू कर दिया। तब छोटी बहूने कहा—अब मुझे रसोई

बनानेवाला काम दे दो। तब सबने कहा कि पहले तो हमने मूर्खतासे दे दिया था, अब कैसे दे सकती हैं। पानी भरनेवाला नौकर देरीसे आता था। छोटी बहूने जल्दी उठकर पानी भर दिया। सासने पूछा तब कहा चक्कीसे बढ़कर यह काम है, तब सासने भी पानी निकालना शुरू कर दिया। अब उसने झाड़ू देनेका काम शुरू कर दिया, सासने पूछा तब कहा कि चरणोंकी धूल बुहारनेसे भगवान् जल्दी मिलते हैं। सब झाड़ू देने लगे। अब उसने देखा बर्तन मलो, लोग भोजन करके जायँ, उसी समय बर्तन मल ले। सासने कहा—यह क्या करती है? उसने कहा—मेरे पिताने तो यह सिखाया है कि यहाँ जो काम करेगी, उसीका ही जल्दी कल्याण होगा, आलसीका नहीं। अब सास बोली—तेरे पिताने क्या-क्या बात बतायी है, सब बताओ। उसने कहा—

भोजन बनानेसे मूल्यवान् है चक्की पीसना, उससे भी मूल्यवान् है पानी भरना, उससे भी मूल्यवान् है झाड़ू देना, उससे भी मूल्यवान् है बर्तन माँजना, उससे अधिक मूल्यवान् है कोई बीमार हो उसकी सेवा करना। अब घरमें लड़ाई होने लग गयी। एक कहे कि मैं करूँगी, दूसरी कहे मैं करूँगी। उस घरमें सतयुग आ गया। गाँवके लोग उस घरके दर्शन करने आने लग गये। वास्तवमें जिस घरमें इस प्रकारकी लड़ाई होती है, वहाँ देवता भी दर्शन करने आते हों तो आश्चर्य नहीं।

यह मार्ग सीधा मुक्तिका मालूम देता है। कलसे ही आरम्भ कर दे। खूब रसोई बनावे, यदि साधु-महात्मा मिल जायँ तो उनको खिलाकर खूब प्रसन्न हों। कोई दिन उनको देनेसे अपने लिये रोटी नहीं बचे तो बारह महीने एकादशी करनेका फल होता है। क्योंकि यह महायज्ञ है।

राजा युधिष्ठिरने यज्ञ किया था। उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई।

उस जगह एक नेवला आया। उसने मनुष्यकी बोलीमें बोलकर कहा—आपको अति प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। मैंने एक ऐसा यज्ञ देखा है, वैसा यहाँ हुआ ही नहीं। उसने एक शिलोञ्छवृत्ति-वाले ब्राह्मणकी कथा कही। यह कथा अश्वमेधपर्वमें आती है। उसके नियम था कि अतिथिको भोजन देकर ही भोजन करना है। कई दिन हो गये। अन्न नहीं मिला। शिलोञ्छवृत्ति उसको कहते हैं कि खेतमें अन्न बिखरा हुआ रहता है। किसानके ले जानेके बाद जो बचे वह ब्राह्मणोंका है। सात दिनतक ब्राह्मणको खानेको कुछ नहीं मिला। सातवें दिन थोड़ा जो मिला, उसको पीसकर सत्तू बनाया। भोजनकी तैयारी की लगभग एक सेर अन्न था। बाहर निकले, देखा एक बूढ़ा ब्राह्मण खड़ा है। उससे पूछा तो उसने भोजन करना स्वीकार कर लिया। उनके सामने थाली रख दी, उतनेसे वह तृप्त नहीं हुआ। स्त्रीके आग्रह करनेपर उसके हिस्सेका भी दे दिया, फिर भी ब्राह्मण देवता तृप्त नहीं हुए, लड़केने देनेका आग्रह किया, उसका हिस्सा भी दे दिया, इस प्रकर चारों हिस्सेका भोजन वह ब्राह्मणदेवता कर गये। वे ब्राह्मणदेवता साक्षात् धर्मराज थे। वे प्रकट हो गये, उन्होंने कहा कि मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम मेरे साथ परम धामको चलो। वे सब परम धाम चले गये। उस थालीमें ब्राह्मणदेवताने चुल्लू किया था। उसमें मैं लोटा तो मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया। उसी अभिलाषासे मैं यहाँ लोटा, ताकि मेरा बाकी शरीर भी सोनेका हो जाय, परन्तु मेरे कीचड़ लग गया। यह अतिथिसेवाका माहात्म्य है। अतिथिसेवा भी महायज्ञ है। सबसे प्रार्थना है कि सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। पहले बात बतायी थी, वह घरवालोंके साथ व्यवहारमें लानी चाहिये, दूसरी अतिथिके साथ लानी चाहिये।

अब दूसरी बात यह है, सत्संगी भाई आ रहे हैं, उनको

माताएँ, बहिनें अपने-अपने कमरेमें जगह दें, खानेको भोजन दें, ऐसा करनेवालोंका अपने ऊपर मैं बहुत उपकार मानूँगा, यह बड़े हर्षकी बात होगी, क्योंकि कमरे रुक गये हैं। भगवान् कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ (गीता ४।११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।

जो मनुष्य जिस बातको लेकर मेरी शरण आते हैं, मैं उनको वही चीज प्रदान करता हूँ। दूसरा भाव जो जिस भावसे भजता है, उसके साथ मैं वैसा ही व्यवहार करता हूँ, कोई स्वामिभावसे, कोई वात्सल्यभावसे, कोई किसी भावसे मुझे भजता है, उसी तरह उसके भावके अनुसार मैं बन जाता हूँ। तीसरी बात जिस प्रकार जो मेरेको भजता है, मैं उसको उसी तरह भजता हूँ। जो मेरेको चाहता है, मैं उसको चाहता हूँ। जो ध्यान करता है, मैं उसका ध्यान करता हूँ। सीताजी विरहमें व्याकुल हैं, इसलिये भगवान् भी व्याकुल हैं। भीष्मजी ध्यान करते हैं, इसलिये भगवान् भी ध्यान करते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा कि आप किसका ध्यान करते हैं। भगवान्‌ने कहा कि शरशय्यापर पड़े भीष्मपितामह मेरा ध्यान कर रहे हैं, इसलिये मैं भी उनका ध्यान कर रहा हूँ।

जो मुझे अपने हृदयमें बसा लेता है, मैं भी उसे अपने हृदयमें बसा लेता हूँ। लक्ष्मीजीने अपने हृदयमें भगवान् विष्णुको बसा रखा है, इसीलिये विष्णुभगवान्‌ने अपने हृदयमें लक्ष्मीको बसा रखा है। उनके हृदयपर इसीलिये लक्ष्मीका चिह्न है।

❑❑

स्वार्थरहित सेवाकी महिमा

भगवान्‌का भजन, मन-इन्द्रियोंका संयम, स्वाध्याय इनको करना चाहिये। यह बहुत ही अच्छी तथा सिद्धान्तकी बात है। स्वार्थके त्यागकी बात तो जितनी कही जाय, उतनी ही थोड़ी है। निष्काम प्रेमभावसे सेवा की जाय तो उसके समान कोई सेवा है ही नहीं। त्यागसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। चित्तमें प्रसन्नता होती है। चित्तका सुधार होकर उद्धार हो जाता है। यह बात विशेष मूल्यवान् बतायी गयी है। यह बात शास्त्रोंमें भी जगह-जगह मिलती है—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥ (गीता १२।१२)

मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है।

शरीरके द्वारा कोई भी क्रिया होवे, सभी स्वार्थरहित होनी चाहिये। सभी स्वार्थरहित हों तो विशेष मूल्यवान् है। हम कोई भी काम करते हैं, उसमें यह देखते हैं कि इस कामके करनेसे मुझे क्या लाभ होगा। हरेक काममें लाभ सोचते हैं, यही तो स्वार्थ है। यह बात तो सारे संसारमें है ही, अब इसकी क्या आवश्यकता है। हमें तो अपनेमें कोई विशेष बात रखनी चाहिये। प्रत्येक क्रियामें यह भाव होना चाहिये कि इस कामसे दूसरोंको क्या लाभ मिलेगा। इस कामसे मेरे द्वारा दूसरोंकी क्या सेवा होगी। सारे संसारकी सेवा करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जैसे

प्रवचन—दिनांक १७/५/५२, दोपहर, स्वर्गाश्रम।

कोई लोभी आदमी यह सोचता रहता है कि इस कामसे रुपये कैसे मिलें। ऐसे ही हमें सेवाके उपायोंकी खोज करनी चाहिये। एक तो होती है सेवा, दूसरी होती है परम सेवा। शरीरके उपकारको सेवा कहते हैं और आत्माके उद्धारका नाम है परम सेवा। आत्माके उद्धारके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। शरीरकी भी निष्कामभावसे सेवा करनेसे सेवा करनेवालेका कल्याण हो जाता है। अपंग, अनाथ, दुःखी, वृद्ध सभी ही पूजाके योग्य हैं, इनकी सेवा करनी चाहिये। बड़े चावसे और निष्कामभावसे सेवा करनी चाहिये। ऐसा सेवा करनेवाला सात्त्विक त्यागी होता है।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते॥ (गीता १८।२६)

जो कर्ता आसक्तिसे रहित अनासक्त होकर अहंकारसे अलग हुआ, धृति (धैर्य) उत्साहसे युक्त हुआ, सिद्धि-असिद्धिमें निर्विकार है, वह सात्त्विक कर्ता कहा गया है।

जैसे किसीके पुत्रका विवाह हो तो उसके तो उत्साह होता है स्वार्थसे, परमार्थमें तो इससे भी अधिक उत्साह एवं आनन्द आना चाहिये। मान-बड़ाईके लिये कर्म नहीं करना चाहिये। ऐश-आरामको त्यागकर प्रत्येक कामको करना चाहिये।

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥ (गीता १२।१२)

ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है।

ध्यानसे भी कर्मोंके फलके त्यागकी विशेषता बतायी है। वर्तमान समयमें शिवकिशनजी डागाकी सेवाका काम अच्छा है। साधन समझकर कर रखा है। मान-बड़ाईकी इच्छा नहीं है,

शरीरकी भी परवाह नहीं है। यह बात अनुकरणीय है। बद्रीदासजी लोहियाकी सेवाका काम भी बहुत सराहनीय था।

प्रश्न—कोई उदाहरण देकर समझाइये कि इस प्रकार सेवा करनी चाहिये।

उत्तर—कुन्तीकी सेवा सराहनीय तथा अनुकरणके लायक है। कुन्तीकी बातें तो बड़ी ही प्रसिद्ध हैं।

एक समय पाण्डव एकचक्रानगरीमें रहा करते थे। राजाने एक राक्षसके साथ जो वहाँ रहता था, समझौता कर रखा था कि तुम्हारे पास नित्य एक मनुष्य, एक भैंसा और एक गाड़ा उड़द आदि आ जाया करेगा। यदि राजा नहीं देता तो वह नगरमें आकर नगरको नष्ट-भ्रष्ट कर देता। सब घरोंकी पारी बँधी हुई थी। बारह वर्षके बाद उस घरकी बारी आयी, जिसमें कुन्ती रहती थी। सायंकाल घरवाले विचार करने लगे कि कल कौन जायगा। घरका मालिक कहता है कि मैं जाऊँगा, स्त्री कहती है कि मैं जाऊँगी। मेरा कर्तव्य है कि मैं पतिके प्राणोंको बचाकर अपने प्राणोंको त्याग दूँ। पतिने कहा तुम्हारा कहना ठीक है, बाल-बच्चोंकी सँभाल कौन करेगा। स्त्री तर्क देती है, आपके जानेके बाद कमाकर कौन लायेगा। मेरे जीते मैं आपका मरना कैसे सहन करूँ। बारह वर्षकी एक पुत्री थी। उसने कहा कि माता-पिताके बिना तो काम नहीं चलेगा। मैं पुत्री हूँ, नरकसे तारे वह पुत्री होती है, पु=नरक, त्री=जो तारे। अभी आपका उद्धार करूँगी तो मेरा कर्तव्यपालन हो जायगा। विवाह तो मेरा करना है ही, आप राक्षसके साथ मेरा विवाह कर दें। पिताने कहा विवाहसे तो स्वर्ग मिलेगा, किन्तु राक्षसकी भेंटसे तो नरकका ही भागी होना पड़ेगा। तुम्हें हम कैसे भेज सकते हैं? पहले तो बारह साल पूर्व एक जवान लड़का था, उसे भेज

दिया, अब किसे भेजें। इतनेमें उसके तीन सालके लड़केने छड़ी लेकर कहा कि मैं उसे मार डालूँगा। वह लड़का राक्षसको नहीं जानता था। सब हँसे। कुन्ती सुन रही थी। मौका पाकर कुन्तीने प्रवेश किया। रातभर आपलोग बातचीत करते रहे, आपको नींद नहीं आयी, क्या समस्या है? तब उन्होंने कहा—देवि! हमपर जो विपत्ति आयी है, उसमें सहायता करना मानवीय शक्तिके बाहर है। ज्यादा आग्रह करनेपर कि हमारा कर्तव्य है कि हम आपके सुखमें भाग लेते हैं तो हमें दुःखमें भी भाग लेना चाहिये। ब्राह्मण देवताने कहा—आपत्ति यह है कि यहाँका राजा मूर्ख है। उसने राक्षसके साथ समझौता कर रखा है कि नित्य एक मनुष्य, एक भैंसा, एक गाड़ा अन्न तुम्हारे पास आ जाया करेगा। सारे नगरकी पारी बँधी हुई है। बारह वर्षपर प्रत्येक परिवारकी बारी आती है। कलकी हमारी बारी है, अतः हम विलाप कर रहे हैं। कुन्तीने कहा—ठीक है! तुम्हारा जाना तो बन ही नहीं सकता। मेरे पाँच पुत्र हैं, मैं किसीको भेज दूँगी। मेरेपर यह बात छोड़ दो। मैं पाँचोंमेंसे किसी एकको भेज दूँगी। सिपाही आये तो मेरे पास भेज देना। एकको एक प्यारा होता है, जिसके पाँच हों, उसे पाँचों ही प्यारे लगते हैं। घरवालोंने कहा—हम अपने बलिदानमें दूसरोंको कैसे भेज सकते हैं। कुन्तीके आश्वासन देनेपर वे चुप हो गये। कुन्तीने भीमसेनको बुलाकर कहा कि बेटा! राक्षसको भेंट देनी है। एक राक्षस है वह नित्य एक व्यक्तिको खाता है, अतः आज तू चला जा। यह सुनते ही वह प्रसन्न हो गया। युधिष्ठिर आये, युधिष्ठिरने सुना कि भीमको राक्षसके पास भेजा है तो कहा, माताजी! आपकी बुद्धि कहाँ घास चरने गयी है। भीमसे तो हम राज्यके वापस मिलनेकी आशा करते हैं। इसको छोड़कर हम चारोंमेंसे किसीको भेज दो। तब कुन्तीने कहा तुम

नहीं जानते हो, इसका शरीर बड़ा पक्का है, इसको कोई भी नहीं मार सकता। बचपनमें एक बार यह मेरेसे छूट गया था, नीचे सिल पड़ी थी, उसपर गिरा तो वह चूर-चूर हो गयी। तुम्हारेमेंसे यदि मैं किसी अन्यको भेज दूँगी तो मुझे यह आशा नहीं कि तुम वापस आ जाओगे। मैं एक पुत्रसे विहीन हो जाऊँगी। अतः मैं भीमसेनको भेजती हूँ। उड़द गाड़ेमें भरकर वह ले गया। राक्षसके आनेमें देर हो गयी। भीमसेनकी खुराक तेज थी। बारह वर्षोंमें भी जो कुछ पाण्डवोंको प्राप्त होता था, आधा वह खाता और आधेमेंसे सभी बाँट लेते थे, भीमसेन उड़द खाने लगे। राक्षसने दूरसे कहा यह कौन है, कहाँसे आया है, खड़ा रह, क्या कर रहा है? भीमसेनने कोई भी उत्तर नहीं दिया। भीमसेनको उसने मुक्का मारा। उसे ऐसा मालूम दिया कि किसी पत्थरपर मुक्का मारा हो। भीमसेन खाते ही रहे। खा चुकनेके बाद राक्षसने पूछा, क्यों रे तू तो मेरा भोजन खाता है। तब भीमने कहा—तू नित्य मनुष्योंको मारता है, आज मैं तुझे मारने आया हूँ। भयंकर युद्ध हुआ। उस स्थानके सभी पेड़ उखाड़ लिये। अन्तमें भीमसेनने उसे मार डाला और उसे लाकर नगरके द्वारके आगे रख दिया। सुबह हुआ, मरे हुएको सभी मारने लगे। सबने कहा मैंने मारा है, मैंने मारा है। उनका निर्णय करना कठिन हो गया। तब फिर वे जिसकी बारी थी उसके घर गये। भीमसे पूछा—क्या तुमने मारा है? हाँ मारा है। इनाम देने लगे तो उसने कहा इनामकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। फिर मातासे कहा कि माताजी अब यहाँ नहीं ठहरना चाहिये। वे आगे बढ़ गये। इन सबसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। कितना त्याग है अपने पुत्रको बलिवेदीपर चढ़ानेको तैयार है। वह कहती है—सुखमें हम बराबर साथ रहते हैं तो दुःखमें भी साथ रहना चाहिये। यह

कर्तव्य समझकर भेज रही है। कितना त्याग है। ब्राह्मण बलिदानके लिये अपने-आपको देनेको तैयार है। स्त्री कहती है कि मेरे प्राणोंको देकर पतिके प्राणोंको बचाना मेरा कर्तव्य है। दोनोंका त्याग देखो। पुत्री कहती है, माता-पिताका प्राण बचाना मेरा कर्तव्य है। कुन्तीका त्याग देखो। युधिष्ठिरका देखो, हमें क्यों नहीं भेज दिया। किसीको भी देखो कितना त्याग है। मामूली त्याग नहीं, प्राणोंकी बात है।

आज सरकार कोई विज्ञप्ति निकाले कि लड़ाई होनेवाली है। हरेक घरसे एक-एक आदमीको देवें तो कैसा विचार होगा। पुत्र कहेंगे पिताजी! आप बूढ़े हो गये हैं, आप चले जायँ। पिता कहेगा कि तुमलोग चार भाई हो, कोई एक चला जाय तो बड़ा कहता कि कौन कमायेगा। अन्तमें यही होगा कि वह राक्षस सबको खा जायगा। त्यागसे सब प्रकारसे लाभ ही है। स्वयं यदि त्याग करेगा तो दूसरोंपर भी प्रभाव पड़ेगा। हरेक काममें त्याग-ही-त्याग दीखना चाहिये। जो त्यागका व्यवहार करता है, वह तो एक प्रकारसे सबको त्यागकी बात सिखाता है। क्रियाकी शिक्षा उपदेशकी अपेक्षा उत्तम है। कहनेसे उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना क्रिया करनेसे पड़ता है। मैं पालन नहीं करता हूँ, मैं कहूँ कि माता-पिताकी सेवा करनी चाहिये। मेरे द्वारा माता-पिताकी कोई विशेष सेवा नहीं हुई तो लोगोंको कम लाभ ही होता है। मैं पालन करूँगा, उसीका ही प्रभाव होगा। मैं निरन्तर भजन-ध्यानके लिये कहता हूँ, किन्तु यदि मैं स्वयं भजन नहीं करता तो प्रभाव कैसे पड़ेगा? मैं भजन-ध्यान करूँ तो लोग कहेंगे यह भजन करता है, अपने भी भजन ही करो, अन्यथा इनसे अधिक तो अपने ही करते हैं, ऐसा कहेंगे। जिस विषयमें मैं कहता हूँ, उसका पालन करूँ तो मेरा कहनेका अधिकार है।

यदि मेरेमें स्वार्थकी बात है तो किसी भी प्रकार प्रभाव नहीं पड़ेगा। भगवान्से प्रेम करनेवाला ही प्रेमकी शिक्षा देगा। वेश्या प्रेमकी शिक्षा नहीं दे सकती। वेश्याका क्या प्रभाव होगा? जो मनुष्य जो व्याख्यान देता है, उसे उसमें निपुण होना चाहिये। अनुष्ठान स्वयं करना चाहिये, तभी कहनेका अधिकार होता है। यह बहुत अच्छा उदाहरण आपके सामने रखा। केवल स्वार्थ-त्यागके भावसे ही आत्माका कल्याण हो जाता है। काम पड़नेपर त्याग करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ध्यान देना चाहिये, कुन्ती उच्चकोटिकी स्त्री थी। धृतराष्ट्र और गान्धारी जब तपस्याके लिये वनमें गये तो कुन्तीने कहा—ये मेरे जेठ-जेठानी हैं। जब इन्होंने वनमें जानेका निश्चय किया तो मैं भी साथ जाऊँगी। उसने कहा मेरे जेठ ससुर एवं जेठानी सासके समान हैं। धृतराष्ट्रके कारण गान्धारी आँखोंपर पट्टी रखती है। दोनों अन्धेके समान हैं। वे तपस्या करेंगे, मैं उनकी सेवा करूँगी, तपस्या करूँगी। जैसा कहा वैसा ही किया। यह ध्यान देना चाहिये कि कुन्तीके साथ उन्होंने कैसा व्यवहार किया था। धृतराष्ट्रके पुत्रोंने भीमको विष खिलाकर गंगामें डाल दिया। कुन्तीको मालूम हो गया। विदुरजीने कहा ये सब काम दुर्योधनका ही है, गम खाना चाहिये। चुप रहनेमें ही लाभ है। भीम जब वापस आया तो उसने कहा कि मालूम होता है कि दुर्योधनने गंगामें बहा दिया होगा। जब मैं नीचे पातालमें गया, नागकन्यासे बगीचेमें मिला। मैं करीब मृतक-सा ही था। नागकन्याकी यह प्रतिज्ञा थी कि जिसको मैं देखूँगी उसीके साथ ही मेरा विवाह होगा। तब उसके पिताने नागोंको बुलाकर मेरा विष उतार दिया। अपने साथ बुराई करनेवालेके साथ भी भलाई ही करनी चाहिये। इतना होनेपर भी कुन्तीने दुर्योधनके पिताकी सेवा की। जब कुन्ती वनमें जा रही

थी, तब द्रौपदी और सत्यभामाने कहा कि हमारेमेंसे किसीको भेज दें, आप न जायँ, किंतु कुन्तीने कहा मैं सेवा करूँगी। आजीवन सेवा कर उन्हींके साथ अपने प्राण गँवाये। कुन्तीने कैसा व्यवहार किया, विचार करना चाहिये। कोई बुराई करे तो उसके साथ भी भलाई ही करनी चाहिये। कुन्तीकी तरह करनेपर ही प्रभाव पड़ सकता है। युधिष्ठिरने भी ऐसा ही किया। जो उनको मारने आये, उनको भी अपने भाइयोंको भेजकर छुड़ाया। जो मारनेके लिये आया, उसके साथ ऐसा व्यवहार किया। क्या कोई दूसरा ऐसा व्यवहार कर सकता है? जिसमें धर्मवीरता है, उसे कौन मार सकता है। उनके धर्मका बड़ा ही प्रभाव था। बुराई करनेवालेके साथ भलाई करना एक नम्बर है। यही स्वार्थका त्याग है। इस प्रकार स्वरूपसे तथा हृदयसे भी त्याग करना चाहिये। फलका त्याग ही त्यागका त्याग है, निष्कामभावसे त्याग करनेमात्रसे ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार कुन्तीकी तरह अपने जीवनको बिताना चाहिये। कुन्तीका प्रसंग संक्षेपसे बताया है। निष्कामभावसे कर्म करना चाहिये। फलकी इच्छा तथा अहंवादी नहीं होना चाहिये। सेवा करनी चाहिये, फल नहीं चाहना चाहिये। जो दुःख दे, उसके साथ तो विशेष उपकार करना चाहिये। इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। शत्रु भी साधु हो जाता है। भाव बदल जाता है। आत्माको पवित्र बना देता है। पवित्र बनानेसे बढ़कर और क्या हो सकता है। यह परम सेवा है। शरीरकी सेवा तो सेवा है, आत्माका कल्याण होना ही परम सेवा है। शरीरकी सेवासे ही उद्धार हो जाय तो फिर निष्कामभावसे परम सेवा होनेमें शंका ही क्या है? जैसे रुपयोंका लोभी जिस-किसी प्रकारसे रुपया मिले—ऐसी चेष्टा रखता है, उसी प्रकार किस तरह सेवा मिले यह भाव रखना चाहिये। यह

भाव उच्चकोटिका है। शूद्रके लिये वेदव्यासजीने धन्य है, धन्य है, ऐसी घोषणा की है। यदि सेवा मिल जाय तो अपना अहोभाग्य समझना चाहिये।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

सबको ईश्वर मानकर सेवा करनेसे परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। सबको नारायणका स्वरूप मानकर सेवा की जाय तो वह सेवा उच्चकोटिकी सेवा हो जाती है तथा परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

साक्षात् भगवान् मानकर वटवृक्षमें पानी देना चाहिये। भगवान् वटरूपमें पान कर रहे हैं। सब कुछ भगवान्का ही रूप समझकर इनकी सेवा भगवान्की सेवा मानकर बड़े उत्साहसे सेवा करनी चाहिये।

सबको भगवान् मानकर हाथ जोड़ना चाहिये। हो सके तो हर प्रकारसे सबको सुख पहुँचाकर कृतकृत्य होना चाहिये। हे प्रभो! हमें नीचेसे नीचा बनाओ, भगवान्से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये। जो सबसे नीचा होकर रहता है, वही अन्तमें ऊँचा उठता है, यह अटल सिद्धान्त है। जो अपनेको ऊँचा या बढ़कर मानता है, उसका पतन होता है। जो अपनेको चरणोंकी रज मानता है, वह ऊँचा उठता है। सबके चरणोंकी धूल होकर ही रहना चाहिये। ऐसा करनेवाला तुरन्त ही भगवान्की प्राप्ति कर लेता है। यह बात भगवान्ने गीतामें भी कही है।

❑❑

जो कुछ है सब परमात्मा ही है

प्रश्न—जप हो रहा हो, मन कहीं और हो तो क्या वह जप है?

उत्तर—वह जप ही है, स्मरण या चिन्तन नहीं। वाणीके द्वारा जो होता है वह तो जप है। चिन्तनका जो माहात्म्य है, वह जपका नहीं। मानसिक भजन-ध्यानका विशेष महत्त्व है।

प्रश्न—जपकी संख्याकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर—यह इसलिये है कि अधिक जप हो जाय। वैसे भजन करें तो मन जपने नहीं देता।

प्रश्न—चलता-फिरता भजन करे तो क्या हानि है?

उत्तर—यह तो ठीक है। मैं तो कहता हूँ कि मल-मूत्र त्याग करते समय भी भजन करो। इस विषयमें एक कहानी आती है। एक लड़का था। गुरुने कहा कि भजन किया कर; किन्तु शौचके समय मत किया कर। वह सारे दिन भजन करता तो शौचके समय अपने-आप भजन होता। उसने जीभ पकड़नी शुरू कर दी। गुरुके पास किसीने खबर पहुँचा दी। गुरुने कहा यह ठीक नहीं। निरन्तर करनेवालेके लिये उस समय भी छूट है, निरन्तर जप होने लगे तो चलते-फिरते करते रहना चाहिये। गिनती करें या नहीं। गिनकर करना अच्छा है। मल-मूत्र त्याग करते समय यदि जप बन्द कर दें और उस समय मृत्यु आ जाय तो हम तो जानकर मरे। हम तो मल-मूत्र कुछ भी करें, नाम जपते रहते हैं। निरन्तर भजन-ध्यान करनेकी चेष्टा रखनी चाहिये। याद नहीं आये तो भगवान्‌की इच्छा। निरन्तर भगवान्‌का भजन करना चाहिये। शरीरसे जो भी कुछ दोष घट जाय, प्रभु उसे क्षमा कर देते हैं। मनुष्यसे खाते-पीते, चलते जीवहत्या होती है। चोरी-व्यभिचार, झूठ-कपट आदि सभी पाप क्षमा कर देते हैं, किन्तु आलस्य और कामचोरीके

लिये क्षमा नहीं है। पाप तो भजनसे भस्म हो जाते हैं। पहले खूब पाप कर लूँ, फिर भजनसे भस्म कर डालूँगा, इस उद्देश्यसे किये हुए पाप फिर क्षमा नहीं होते। अपने प्रभु बड़े दयालु हैं। भविष्यके लिये प्रतिज्ञा करे और आगे पाप नहीं करे तो वे क्षमा कर देते हैं। भजन–ध्यान तथा ज्ञानसे भी पाप भस्म हो जाते हैं।

मैं बार–बार बताता हूँ, तुमलोग काममें नहीं लाते हो तो तुम्हारी इच्छा। मैं यह देखता हूँ कि अपनी भी आदत है कहनेकी, इनकी भी आदत है सुननेकी। इस प्रकारसे चक्कर कटने लग जाते हैं। मुझे सुनानेकी आदत और तुम्हें सुननेकी आदत पड़ गयी है। जिस प्रकार किसीकी गेंदका खेल देखनेकी आदत है, किसीकी खेलनेकी, इसी प्रकार मेरी कहनेकी आदत है, तुम्हारी सुननेकी आदत है, काममें लानेकी आदत नहीं। दोनों पात्र हों तो कल्याण हो ही सकता है। एक जोरदार हो तो भी काम हो सकता है। मेरेमें ताकत हो तो भी काम हो सकता है। तुम्हारेमें ताकत हो, श्रद्धा हो तो काम हो सकता है। या तो वक्तामें या श्रोतामें ताकत होनी चाहिये। भगवान्‌का दिया हुआ अधिकार मुझे हो, फिर तुम्हारेमें श्रद्धाकी कमी हो तो भी कोई बात नहीं। मेरी मुझे आपकी आपको सुलझानी चाहिये। श्रोताके दोषोंको वक्ताको देखना अनुचित है। वक्ताके दोषोंको श्रोताओंको देखना भी अनुचित है। हमारेमें तो श्रद्धा है, महात्मा भला नहीं, यह सफाई देनी खोटी है। वक्ता यह सफाई दे कि यह हमारी बात मानता नहीं तो हम क्या करें, तो मामला गड़बड़ है। अपने ही दोषोंको अपने–आप देखें तो शीघ्र ही काम हो सकता है। यदि यह भगवत्प्राप्तिका कार्य सिद्ध नहीं होगा तो सचमुच ही बड़ी भारी दुर्दशा होगी। श्रद्धाकी कमी नहीं है, किन्तु यत्नकी कमीके कारण यदि विचलित हो गया तो क्या गति होगी। दुर्गति नहीं होती, अगले जन्ममें परम श्रद्धा होकर फिर

भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। परम श्रद्धा होनेके बाद फिर विलम्बका काम नहीं है। अश्रद्धा ही रसातलमें ले जा रही है, यदि चेष्टा करें तो काम हो सकता है। अश्रद्धा केवल परमात्माके तत्त्व-रहस्यको न जाननेके कारण है। उनका ही श्रवण-मनन करें तो बड़ा ही लाभ हो सकता है। कानोंसे उनकी ही लीलाका श्रवण करे, वाणीसे जप करे तो काम हो सकता है। बहुत-से उपाय हैं, जो कुछ दीखता है सब स्वप्नवत् है, मायामात्र है। इस प्रकार सबका अभाव कर दे। सबका अभाव करनेके बाद अभाव करनेवाली वृत्तिका भी अभाव कर दे। सबका अभाव करनेके बाद भावरूप जो चीज बच जाय, वह परमात्मा है, वह चेतन है, सबमें व्यापक है। वह परमात्माका स्वरूप है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

यह भक्तिके मार्गसे भी हो सकता है और ज्ञानमार्गसे भी हो सकता है। सबमें सच्चिदानन्द बुद्धि ही अच्छा साधन है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ (गीता १३। ३०)

जिस क्षण यह पुरुष भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको एक परमात्मामें ही स्थित तथा उस परमात्मासे ही सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

जो कुछ है सब परमात्मा है। परमात्मा सत्-चित्-आनन्द हैं। जो कुछ सत्ता है सब परमात्माकी ही है। आनन्द ही सबको प्रिय है। कोई-न-कोई किसीको प्रिय है ही। सत्ता सबकी है, किसीका

अभाव नहीं, बदल गया, उसका परिवर्तन हो गया। कपड़ा जल गया, सत्ता तो है ही उसका राखके रूपमें परिवर्तन हो गया। रूप ही तो बदला है। किसी-न-किसीको किसी-न-किसी वस्तुसे आनन्द होता ही है। अतः सारा संसार सच्चिदानन्दमय है। जड़ पदार्थोंमें सत्ता अवश्य है। जड़ यह संसार है, उसमें सत्ता तो है ही।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ (गीता १३। १७)

वह परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा गया है। वह परमात्मा, बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है।

वह ज्योतियोंका भी ज्योति है। उसके सिवाय कोई वस्तु है ही नहीं। वह अन्धकारसे अति परे कहा जाता है। इस न्यायसे सब कुछ सच्चिदानन्द ही है। यहाँ यह शंका हो सकती है। सच्चिदानन्दघन तो एकरस है, उससे परिवर्तन विकार नहीं होता। इसका तो परिवर्तन विकार देखा जाता है। अधिक समझो या सुनकर मान लो। दूसरा उपाय यह है—मनुष्य, पशु-पक्षियोंमें चेतनता सत्ता है। प्रत्यक्ष ज्ञान है, सत्ता तो सबमें है ही। मनुष्य, पशु, पक्षीमें आत्माकी सत्ता तो है ही। तीसरी बात यह है कि स्वयं परमात्मा ही जगद्रूपमें स्थित हैं। सब परमात्मा ही परमात्माका स्वरूप है। हमारा संकल्प हमारा स्वरूप है। परमात्माका संकल्प परमात्माका स्वरूप है।

प्रश्न—यह जो दीखता है, इसे दृश्य समझें या भगवान्?

उत्तर—भगवद्रूप दृश्य समझे। भगवान् ही दृश्यरूप होकर दीख रहे हैं। जो कुछ भी दीखता है चाहे यों मान लें कुछ भी नहीं है। चाहे भगवान्‌का स्वरूप मान लो। ये जो नाशवान् मिथ्या है, सबका बाध कर दिया, बाध करनेवाली वृत्तिका भी बाध कर दिया। सब कुछ मेरा ही स्वरूप है। '**अहं ब्रह्मास्मि**' मेरे

सिवाय और कोई भी नहीं है। स्वप्न भी मेरा ही स्वरूप है। मेरा ही यह संसार है। वह निराकार शरीर भी मेरा ही है। मेरेसे भिन्न वस्तु कुछ भी नहीं है।

१. जो कुछ दृश्यमात्र है। है ही नहीं। उस जगह ब्रह्म ही है।

२. सबका अत्यन्त अभाव होनेपर जो शेष रहता है वह ब्रह्म ही है।

३. सारी जगह भगवान्-ही-भगवान् हैं।

४. सब कुछ मेरी आत्मा ही है।

ये सब बातें गीतामें भी हैं। जो कुछ है सब ब्रह्म ही है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ (गीता १३।३०)

जिस क्षण यह पुरुष भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको एक परमात्मामें ही स्थित तथा उस परमात्मासे ही सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गीता १३।१५)

वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।

अवान्तर भेद बहुत हैं। मुख्य बात ध्यानको लेकर चार प्रक्रिया है। गीता ७।१७, १३।३०में सब कुछ परमात्मा-ही-परमात्मा है। **'यो मां पश्यति'** ६।३० भूतोंके बाहर-भीतर सब कुछ मैं ही हूँ। सब मेरा ही स्वरूप है। संसार है ही नहीं, परमात्मा-ही-परमात्मा है।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ (गीता १३।२७)

जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे स्थित देखता है वही यथार्थ देखता है।

परमात्मा ही सारे भूतोंमें समभावसे स्थित हैं। सबके नाश होनेपर भी उनका नाश नहीं होता। सब कुछका अभाव एवं परमात्माका ही भाव है।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥ (गीता ८। २०)

उस अव्यक्तसे भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्तभाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता।

इस अव्यक्तसे सनातन अव्यक्त श्रेष्ठ है। सबका नाश होनेपर भी उस अव्यक्तका नाश नहीं होता। सबमें एक आत्मा है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (गीता ६। २९)

जो सबको अपनेमें और अपनेको सबमें देखता है वह योगयुक्तात्मा सर्वत्र सम देखनेवाला है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥ (गीता २। १७-१८)

नाशरहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत्—दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशीका विनाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है।

इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! तू युद्ध कर।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (गीता २। २०)

यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।

न जीता है न मरता है। न होकर होनेवाला है। अज है। नित्य है। यह शाश्वत है, पुराण है। आत्मा नित्य है।

'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्' (गीता ६। २५)

इसके सिवाय और किसीका भी चिन्तन न करें। सब कुछ परमात्मा-ही-परमात्मा है। चार प्रकारकी प्रक्रिया बतायी। श्लोक भी गीताके बताये।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ (गीता १३। ३४)

शरीर क्षेत्र है, परमात्मा क्षेत्रज्ञ है, इसके अन्तरको जो जानता है, वह ही जानता है, आत्मा नित्य है, शरीर अनित्य है, जो इस प्रकारसे भेदको जान जाता है, वह परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

ब्रह्म सत्य है और सब जगत् मिथ्या है। ब्रह्म एक ही है। भगवान्ने दो निष्ठाएँ कही हैं—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ (गीता ३। ३)

हे निष्पाप! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है। उनमेंसे सांख्ययोगियोंकी निष्ठा तो ज्ञानयोगसे और योगियोंकी निष्ठा कर्मयोगसे होती है।

❑❑

अनन्यभक्तिकी महिमा

कंचन तजना सहज है सहज त्रियाका नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या दुर्लभ तजना एह॥

किसी कविका कहना है कि कंचनका त्याग उच्चकोटिके साधकोंके लिये सहज है, स्त्रीका त्याग भी सहज है, परन्तु मान-बड़ाई और ईर्ष्याका त्याग तो बड़ा ही कठिन है, किन्तु साधारण पुरुषोंके लिये यह बात है—

एक कंचन एक कामिनी
दुर्लभ घाटी दोय॥

कंचन तथा कामिनी एवं उनसे मिलनेवाले सांसारिक पदार्थ कामिनी यानी स्त्री और बाल-बच्चे साधनमें विघ्न करनेवाले हैं।

प्रथम तो यह समझना चाहिये कि रुपयोंका त्याग बड़ा ही कठिन है। एक कहानी आती है। एक लोभी वैश्य था। वह भजन-ध्यान भी किया करता था। उसकी कंचन-कामिनीमें भी बड़ी प्रीति थी। वह पूजा-पाठके लिये बैठता। उसकी स्त्री अपने बच्चेको उसके पास बैठा देती और खानेको एक लड्डू दे देती और रसोई बनाने चली जाती। कौए भी मौका देखते रहते। जब उसकी वृत्ति दूसरी ओर जाती तो कौए लड्डू छीननेका प्रयत्न करते। वह भी उन्हें डराया करता। उसका यही ध्यान रहता कि बच्चेसे कोई मिठाई न ले जाय। वह महात्माके पास गया। उसने कहा, मैं भजन-ध्यान करता हूँ, किन्तु मेरा मन नहीं लगता। तब उस महात्माने कहा कि भगवान्के भजनको आदर दिया करो। तब उस वैश्यने कहा कि मैं आदर तो खूब दिया करता

प्रवचन—दिनांक २१/५/५०, स्वर्गाश्रम।

हूँ। एक दिन महात्मा उसके घरपर आये। उन्होंने देखा कि सामने एक लड़का बैठा है, लड्डू खा रहा है, उसका पिता कौओंको डरा रहा है। फिर वह महात्माके पास आया। महात्माने कहा कि भजन-ध्यान किया करो। आदर दोगे तो मन लगेगा, ऐसे ही नहीं लगता। तुम कहते हो बहुत आदर देता हूँ, किन्तु तुम भजन-ध्यानको एक कौड़ी-जितना भी महत्त्व नहीं देते। उस वैश्यने पूछा कि कैसे? तब महात्माने पूछा—एक लड्डूके क्या दाम होते हैं, तब उसने उत्तर दिया कि दो पैसा। तब पूछा कि दो पैसोंमें कौड़ी कितनी होती है? उस वैश्यने कहा—१२८। फिर पूछा—एक माला फेरनेमें कितना समय लगता है? दस मिनट, उस समयमें कितने नाम होते हैं? १०८ नाम होते हैं। तुम्हारे लड़केको लड्डू खानेमें कितना समय लगता है? २०-२५ मिनट, इतनेमें तू कितनी माला जपता है? कम-से-कम मैं दो माला जप लेता हूँ। दो मालामें २१६ मन्त्र होते हैं। नाम ३४५६ होते हैं। हिसाब लगाओ कि तुम भजन-ध्यानको कितना महत्त्व देते हो। कौड़ी-जितना भी महत्त्व नहीं देते हो। तुम्हारा ध्यान तो लड्डूकी ओर ही रहता है। लड्डूको जितना महत्त्व देते हो, उतना महत्त्व मालाको ही देना चाहिये। जब प्रधान हेतु लड़केके भोजनकी रक्षा है, फिर भजन-ध्यान किस प्रकार हो सकता है। तुम्हारा ध्यान भगवान्‌को छोड़कर कहीं भी नहीं जाना चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह है कि हम भजन-ध्यानको आदर नहीं देते। आदरसे किये हुएका बड़ा अच्छा फल मिलता है और अनादरका तो दण्ड मिलना चाहिये, किन्तु भगवान् दण्ड नहीं देते। वे दयालु हैं, कृपालु हैं।

अब आपको दूसरी बात बतायी जाती है। महर्षि पतंजलिने

कहा है कि अभ्यास और वैराग्यसे चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है। उस परमात्माकी प्राप्तिके लिये किये हुए कर्मोंका नाम अभ्यास है। दीर्घकालतक निरन्तर सत्कारपूर्वक अभ्यास करनेसे दृढ़ वैराग्य होना चाहिये, किन्तु वह अभ्यास आदरपूर्वक निरन्तर किया जाय, तब चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि चाहे एकान्तमें करो या व्यवहारकालमें, भगवान्‌की स्मृति रखनी चाहिये। कार्य करते समय भगवान्‌की स्मृति ठीक नहीं होती, इसलिये एकान्तमें ध्यान किया जाता है। आजकल भगवान्‌के भजन-ध्यानकी जगह एकान्तमें शयन करते हैं। गाढ़ सुषुप्तिमें आनन्द आता है, यह बात नहीं है। उनका यह कहना बेसमझी है। ऐसी बात होती तो भगवान् उससे उलटी बात क्यों कहते?

'**निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥**' (गीता १८। ३९)

निद्रा, आलस्य और प्रमादका नाम तामसी क्रिया है। इन्हें तामसी क्रिया कहते हैं।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ (गीता १४। १८)

सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष ऊँचे लोकोंमें जाते हैं, रजोगुणवाले बीचके लोकोंमें जाते हैं और नीच कर्म करनेवाले पुरुष नीचेके लोकोंमें जाते हैं।

कोई कहता है कि उपनिषदोंमें लिखा है, महात्मा और पागल एक-सा होता है तो क्या पागल होना चाहिये? नहीं, महात्मा ही होना चाहिये। छठी भूमिकामें पहुँचनेपर महात्माकी दशा पागलकी तरह हो जाती है। किसी-किसीका आचरण बालककी तरह ही होता है। यह नहीं कि तुम ध्येय कर लो कि हम तो

बाहरसे पागल बनेंगे। पागलकी नकल करें तो हमें पाप ही लगेगा, न कि धर्म होगा। सुषुप्ति-अवस्थामें नित्य प्रलय रहती है, उस समय उसे बाहरका ज्ञान नहीं रहता। उसी प्रकार महात्माका भी यही ढंग हो जाता है। चौथी भूमिकामें संसार स्वप्नवत् दीखता है। स्वप्न सोनेपर आता है, जागनेपर वह समझता है कि रात्रिमें यह स्वप्न आया था। जब मनुष्य जागता है तो स्वप्नके संसारको स्वप्नरूप ही देखता है। वह देहसे रहित हो जाता है। उसकी संज्ञा विदेह हो जाती है। उस समय उत्तम महात्माको यह सारा संसार स्वप्नवत् दीखता है। न राग है, न द्वेष है, न हर्ष है, न शोक है। स्वप्नके संसारका नाम तो भूतकाल है। अतः ममता नहीं रहती। पाँचवीं भूमिकामें सुषुप्ति-अवस्था रहती है और छठी भूमिकामें गाढ़ सुषुप्ति आनेपर फिर पत्थरकी-सी अवस्था हो जाती है। संसारका बाहरी ज्ञान भी उसे नहीं रहता। सोना तो तामसी है। एकान्तमें जाकर जो भजन-ध्यानके बहाने सोते हैं, वे तो गलत रास्तेपर हैं। वे खतरेमें हैं। परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब होना ही खतरा है। लोग समझते हैं कि वह गुफामें ध्यानके लिये जाता है, किन्तु वह तो लोगोंको ठगता है। जो इस प्रकारसे लोगोंको ठगता है, वह वास्तवमें मिथ्याचारी है, पाखण्डी है, पाखण्ड रचता है।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥ (गीता ३। ६)

जो बाहरसे कर्मेन्द्रियोंको रोककर मनसे संसारका चिन्तन करता है, वह इन्द्रियोंके अर्थोंमें विमूढ़ हुआ पुरुष मिथ्याचारी है, ऐसा कहा जाता है।

जो साधक एकान्तमें बैठकर इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकनेका

प्रयत्न करता है, फिर भी यदि उसे चिन्तन हो जाता है तो यह उसकी कमजोरी ही है। इसपर ध्यान न देकर इसे हटानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यही तो हटानेका समय है, साधन करके हटाना चाहिये। बुरा भाव नहीं आना चाहिये। भजन-ध्यानको आदर देना चाहिये। पहले तो विचार करना चाहिये फिर लक्ष्य बनाना चाहिये। बिना लक्ष्यवाला तो जड़ (मूर्ख) है। बिना लक्ष्यके मनुष्य-जीवन व्यर्थ ही चला जायगा। मोटरका कोई लक्ष्य न हो तो देखो फिर क्या आनन्द होगा। बिना लक्ष्यके छोड़ी हुई मोटर टूट-फूट जायगी। लक्ष्य पहले बनाना चाहिये। लक्ष्यरहित क्रिया करनेवालेको कोई भी लाभ नहीं। लक्ष्य यह बनाना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति सबसे बढ़कर है, यह बात गीता, रामायण, भागवत तथा महापुरुष भी कहते हैं। यही लक्ष्य बनाकर इसकी सिद्धिका प्रयत्न करना चाहिये। एकान्तमें जाकर ध्यान करना है तो ध्यानमें बाधक जो निद्रा-आलस्य आदि हैं, उनका त्याग कर देना चाहिये और ध्यानमें सहायक जो आसन इत्यादि हैं, इनको धारण करना चाहिये। ऐसे स्थानमें बैठना चाहिये, जहाँ हल्ला न हो। जनसमुदायमें नहीं रहना चाहिये।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥

(गीता १३। १०-११)

मुझ परमेश्वरमें एकीभावसे स्थितिरूप ध्यानयोगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा शुद्धदेशमें रहनेका स्वभाव और विषयासक्त समुदायमें प्रेमका न होना तथा अध्यात्म-ज्ञानमें नित्य

स्थिति और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सर्वत्र देखना यह सब तो ज्ञान है, इससे विपरीत जो है वह अज्ञान है—ऐसा कहा गया है।

यह बात भगवान्‌ने कही है। भगवान् कहते हैं कि व्यभिचारिणी भक्ति नहीं करनी चाहिये। मेरे सिवाय और किसीका भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। परमात्मामें चित्तकी वृत्तियोंका समावेश कर देना चाहिये। भगवान्‌की भक्ति निष्कामभावसे हेतुरहित करनी चाहिये। एकतार भगवान्‌का ध्यान हो। एकान्त देशका सेवन रखना और जनसमुदायमें प्रीति नहीं रखनी चाहिये। यह सिद्ध हुआ कि ध्यानके समय जनसमुदायका संग और दूसरोंसे प्रीति नहीं होनी चाहिये। स्वाध्याय भी वृत्तियोंको रोकनेमें सहायक है। कोई विक्षेप या आलस्य आवे तो गीता, रामायण, भागवत आदि पुस्तकोंका स्वाध्याय करना चाहिये। यदि महापुरुष मिल जायँ तो और भी अच्छी बात है। सत्संग, स्वाध्याय ये परमात्माके ध्यानमें बड़े सहायक हैं। जप तो और भी श्रेष्ठ है। ध्यानसहित जपसे बड़ा लाभ होता है। यह बड़ा ही सरल साधन है। अभ्यास, वैराग्यकी अपेक्षा नाम-जप सरल है। निराकारका ध्यान करो या भगवान्‌के साकाररूपका ध्यान करो, जिसमें क्लेश, कर्मवासना न हो, कर्मविपाक न हो, पुरुष विशेष हो, राग-द्वेष आदि न हो, शुभ-अशुभमिश्रित कर्मसुख, दुःख, वासना कुछ भी नहीं है, वह ईश्वरका स्वरूप है। उस ईश्वरका ध्यान करना चाहिये। वह नित्य है, उसकी अवधि नहीं है। परमात्माके नामका जप करना चाहिये, ध्यान भी करना चाहिये। उसका ध्यान और जप करना बड़ा उत्तम उपाय है। इससे आत्मा शुद्ध होती है, फिर चित्तकी चंचलता और आलस्य इन दोनोंका नाश कर देना चाहिये। भगवान्‌ने भी यही बात कही है। अर्जुनने कहा कि यह मन बड़ा ही चंचल है। भगवान्‌ने कहा है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (गीता ६। ३५)

हे महाबाहो! यह मन बड़ा चंचल है, इसमें कोई भी संशय नहीं। अभ्याससे एवं वैराग्यसे यह मन वशमें किया जाता है। अभ्यासका मतलब परमात्माका ध्यान लगानेका प्रयत्न है। गीतामें ही बतलाया है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ (गीता ६। २६)

जहाँ-जहाँ यह चंचल स्थिर न रहनेवाला मन जाय, वहाँ-वहाँसे इसे रोककर आत्मामें ही लगाये। यह वैराग्यकी बात बतायी।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ (गीता ५। २२)

जो भी संस्पर्शोंसे उत्पन्न होनेवाले भोग हैं, सभी दुःखको देनेवाले हैं, वे सब आदि-अन्तवाले हैं, पण्डित पुरुष इनमें नहीं रमते। उनमें तो मूर्ख ही रमते हैं। यह बतलाकर फिर अंतमें कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ (गीता ६। ४७)

सम्पूर्ण योगियोंमें श्रद्धावान् पुरुष जिसने मेरेमें मन लगा दिया है, ऐसा भक्त मुझे प्यारा है।

जितने भी कर्मयोग, ध्यानयोग, अष्टांगयोग हैं, भक्तियोग उन सबमें युक्ततम है। जो मेरेमें मन लगाकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करता है, उसे सबसे बढ़कर तथा सबसे सुगम बताया। जगह-जगह कहा है। बारहवें अध्यायमें अर्जुनने पूछा—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥ (गीता १२। १)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकारसे निरन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वरको और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्मको ही अतिश्रेष्ठ भावसे भजते हैं—उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं? तब भगवान्‌ने कहा—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥ (गीता १२। २)

जो पुरुष मेरेमें मन लगाकर नित्य मेरेमें युक्त हुए श्रद्धासे मेरी उपासना करते हैं वे युक्ततम माने गये हैं। मेरे सगुणरूपमें जिन्होंने मनको लगा दिया है, श्रद्धा करके जप-ध्यान करते हैं, वे भक्त युक्ततम हैं। परमात्मा निर्गुण-निराकार है, उसका चिन्तन मनसे हो ही नहीं सकता, नित्य है, अक्रिय है। ऐसे भगवान्‌के स्वरूपकी उपासना इन्द्रिय-समूहको वशमें करके करनी चाहिये। सब जगह जिनका समभाव है, सबमें आत्मा समझकर जो सबके हितमें रत है, वह युक्ततम भक्त है। अर्जुन फिर पूछते हैं कि आपको प्राप्त होनेवालोंमें भी क्या कई श्रेणियाँ हैं। भगवान् कहते हैं, निराकारवालोंको परिश्रम अधिक है, कठिनता है, इसलिये मुझ सगुण-साकारका भजन कर। मेरेमें जो चित्त लगाता है, उसे मैं शीघ्र ही पार कर देता हूँ। हे अर्जुन! मैं अनन्य भक्तिके द्वारा प्राप्त हो सकता हूँ। अनन्य भक्तिसे भगवान्‌की प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है। सगुण-साकारका कोई साधक दर्शन भी करना चाहे तो उसे दर्शन भी हो सकते हैं। ज्ञानसे तो यथार्थ ज्ञान हो सकता है, मुक्ति भी मिल सकती है। भगवान् कहते हैं कि दर्शन देनेके लिये मैं बाध्य नहीं। दर्शन तो भक्तिसे ही होते हैं। नेत्रोंसे

दर्शन करना यह विशेष बात है। दर्शन, तत्त्वज्ञान और मुक्ति तीनों भक्तिसे ही हो सकते हैं, किन्तु ज्ञानसे तो दो ही काम होते हैं—ज्ञान तथा मुक्ति। यह मार्ग तो विचारशील पुरुषोंके लिये है। विदेहियोंके लिये तो ज्ञानमार्गमें कोई भी कष्ट नहीं है। अनन्य भक्तिवालोंको तुरन्त ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। जबतक शरीरमें अहंभाव बना हुआ है तबतक ज्ञान होना कठिन है। मैं मुक्त हूँ ऐसे अनुभववालेको शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। प्रेम-श्रद्धा होनी चाहिये। साधनको आदर देना चाहिये, चाहे एकान्तमें हो या व्यवहारकालमें। गोपियाँ जप-ध्यान करते हुए काम कर रही हैं। ऊखलमें धान कूटते समय, दही बिलोते समय, दूध दुहते समय, सारा काम करते समय कीर्तन और ध्यान कर रही हैं। उनके लिये ही भगवान्‌ने कहा है कि मुझे गोपियोंसे बढ़कर और कोई भी प्रिय नहीं है। भगवान् यही बात कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। (गीता ८।७)

इसलिये हे अर्जुन! सब समय मेरा स्मरण करते हुए युद्ध करो।

मन-बुद्धि लगाकर काम कैसे हो सकता है? युद्धमें स्मरण कैसे हो सकता है? भगवान् क्यों कहते हैं, क्योंकि गोपियाँ करती थीं। एक बार मैंने एक नटका तमाशा देखा। नट और नटनीके लिये दो रस्से बाँधे गये। फिर वे रस्सेपर चढ़े। सिरपर हाँडी, रस्सीपर चलना, कण्ठमें लटका हुआ ढोलक बजाना, गाना सभी काम करती है। किसलिये, पैसोंके लिये वह सभी काम एक साथ करती है। इस पारसे उस पार चली जाती है। रस्सेपर चलती है, हमारी तरह ही चलती है और उस पार चली जाती है। जब ये सभी काम एक साथ हो सकते हैं तो भगवान्‌के

लिये तो होने ही चाहिये। उसने तो पैसोंके लिये ही अभ्यास किया है। उसका मुख्य ध्यान पैरोंपर है, वैसा ही परमात्मामें ध्यान लगाना चाहिये। ढोल बजाती है, ध्यान पैरोंपर है, इसी प्रकारसे ही काम करना चाहिये। भोजन करते हैं, ध्यान दूसरी जगह है। मल-मूत्रका त्याग कर रहे हैं, ध्यान कहीं और ही घूम रहा है। भयसे जिस प्रकार वह पैरोंपर ध्यान रखती है, उसी प्रकार ही हमें परमात्माका ध्यान करना चाहिये। दूसरी जगहसे मन हटाकर परमात्मामें ही मन लगाना चाहिये। मन व्यर्थमें ही भोगोंका चिन्तन करता है। व्यर्थ बातोंका चिन्तन करता रहता है। मेरा कहना है कि आपको सोलह आना ध्यान परमात्मामें ही लगा देना चाहिये। हम चाहते हैं परमात्मा मिलें, किन्तु हम करते हैं अवहेलना। हम दुःख नहीं चाहते, किन्तु क्रिया करते हैं दुःखकी। मनकी क्रियाका विशेष मूल्य है, अतः मनसे जहाँतक हो सके परमात्माका ही चिन्तन करना चाहिये। यदि आपका मन विषयभोगोंमें है तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं। यदि मन संसारमें है तो खतरेमें है। यदि भगवान्‌में मन है तो मुक्ति है। आपका साधन अवहेलनासे होता है। यदि आप उसका आदर करेंगे तो वह निश्चय ही तुम्हारा आदर करेगा। यदि उसका अनादर करोगे तो वह भी तुम्हारा अनादर करेगा। यदि इसका आदर होगा तो यह परमात्माकी प्राप्ति करा देगा। अनादर करोगे तो मुक्तिकी जगह स्वर्ग ही मिलेगा। योगभ्रष्ट पुरुष मरकर स्वर्गमें जाता है, फिर आकर साधन करता है। योगभ्रष्टको स्वर्ग मिलता है। यह अनादर करनेका ही तो परिणाम है। कहाँ ब्रह्मकी प्राप्ति और कहाँ स्वर्गकी प्राप्ति। इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर परमात्माका ही ध्यान करना चाहिये। रुपयोंकी प्राप्ति खराब समझकर इनको लात मार देनी चाहिये। भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

रुपयोंका तो हृदयसे त्याग कर ही देना चाहिये। पुरुषोंको तो कामिनीका त्याग इस प्रकार कर देना चाहिये कि फिर मनमें भी न आवे। स्त्रीमें प्रेम करना तो बहुत खराब है। मल-मूत्रके सिवाय उसमें और क्या है। गन्दगीकी टोकरी है। मरनेके बाद तो क्या पता भगवान् मल-मूत्रका कीड़ा बना दें। यही बात स्त्रियोंको पुरुषोंके प्रति समझ लेनी चाहिये। इन सबको छोड़कर परमात्माका ध्यान करना चाहिये। भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्ण कितने ऊँचे हैं, वे बड़े ही निर्मल हैं, चेतन हैं। भागवतमें कथा है—जिस समय ग्वालबालोंको तथा बछड़ोंको ब्रह्माजी चुराकर ले गये, तब भगवान्ने बड़ी लीला की। ठीक वैसा-का-वैसा ही रूप बना लिया, तब ब्रह्माजी जान गये कि ये साक्षात् परमात्मा हैं। वे भगवान्की स्तुति, प्रार्थना करने लगे। चेतन भगवान् ही सबके रूपमें हो गये। भगवान् जन्मते-मरते नहीं, किन्तु ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे जन्मते-मरते हों। मतलब यह है कि मनुष्योंकी तरह ही भगवान् दीखते हैं, परन्तु समझना चाहिये कि बहुत अधिक अन्तर है। परमात्मा चेतन है। चन्द्रमामें जिस प्रकार तेजतत्त्व प्रधान है, उसी प्रकार परमात्मामें चेतनता प्रधान है, नित्य ज्ञानस्वरूप हैं। भगवान् जो कुछ करते हैं सब ठीक करते हैं। वे असम्भवको भी सम्भव बना सकते हैं। शुद्ध भगवान्के साकाररूपमें प्रेम न करके हाड़-मांसके पुतलेमें प्रेम करना कितनी बड़ी मूर्खता है। जिस स्त्रीसे प्रेम करते हैं उसके गुण-प्रभावकी ओर तो देखो। परमात्माके एक अंशमें भी सारे संसारके गुण नहीं समा सकते। भगवान्से जो प्रेम करता है, उसे भगवान् स्वतः अपनेको समर्पित कर देते हैं। पूतनाको भगवान्ने माताकी गति दी। पूतना झूठी माँ बनी, विष देनेवाली माँको सद्गति दी। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब विष

पिलानेवाली माताको यह गति दी तो यशोदा जो दूध पिलानेवाली माता है, उसे क्या गति दी। यशोदा धमकाती है तो भगवान् काँपते हैं। यशोदा जिस आँगनमें रहती थी, उस आँगनकी धूलिमें भी मुक्ति है। यशोदा दूसरोंको भी मुक्ति दे सकती है। एक ब्राह्मणदेवताको भोजनके लिये यशोदा मैयाने बुलाया। उसने कहा कि मुझे सामग्री दे दो, मैं अपने-आप भोजन बनाऊँगा। भोजन बनाया और भगवान्‌का स्मरण किया। भगवान् बालकरूपमें तो थे ही, आ गये और खाने लगे। फिर दूसरी बार भोजन तैयार किया और भगवान्‌का स्मरण किया। वे आये और खाने लगे। तब फिर ब्राह्मणने यशोदासे कह दिया तो यशोदाने कहा कि मेरी गलती हुई, अब मैं इसे बाँधकर रखूँगी। तीसरी बार भी इसी प्रकार जा पहुँचे। तब माताने उन्हें पीटा। तब भगवान्‌ने मातासे कहा कि मैं क्या करूँ। यह मुझे क्यों बुलाता है? तब वह समझ गया कि ये साक्षात् भगवान् हैं। तब वह यशोदाके आँगनमें लोटने लगा। यशोदाने पूछा कि क्या कर रहे हो। उसने कहा कि आपके आँगनमें मुक्ति है। यशोदाके आँगनमें आनेसे ही पूतनाको मुक्ति मिली। ऐसे साक्षात् जो सगुण-साकार भगवान् हैं, उनको छोड़कर जो दूसरोंको भजता है, वह मूर्ख है। पूर्णब्रह्म परमात्माको छोड़कर जो सांसारिक विषयभोगोंमें रम रहा है, उसे धिक्कार है। ***'एक कंचन एक कामिनी दुर्लभ घाटी दोय।'*** इनको त्यागनेके बाद फिर मान-बड़ाईके त्यागकी यथाशक्ति चेष्टा करनी चाहिये। मान-बड़ाई तथा ईर्ष्याको हटानेकी चेष्टा करनी चाहिये। स्वामीजी आये, बड़ी पूजा की, मान-सत्कार आदि भी किया। मैं आया तो मेरा भी वैसा ही सत्कार किया। हमने देखा कि श्रद्धालु हैं। कहीं तिरस्कार हुआ तो कहते हैं कि यहाँ आना ही नहीं है। बहुत-से आदर-सत्कारमें ही फँस जाते

हैं। कंचन-कामिनी इन दो घाटियोंको त्यागनेके बाद फिर मान-बड़ाईको भी त्यागनेकी चेष्टा करनी चाहिये। एक ओर मान दूसरी ओर अपमान दोनों ही समान होने चाहिये।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥ (गीता १४। २५)

मान तथा अपमानमें तुल्य है, मित्र तथा शत्रुमें तुल्य है, ऐसे सब आरम्भोंका त्यागी गुणातीत कहा जाता है।

यह घाटी भी विशेष नहीं है, इसका भी त्याग हो सकता है। कोई कहे कि आप धर्मात्मा हैं, आपकी सेवा करनेसे हमारा कल्याण होगा और मैं कहूँ कि कर लो तो समझना चाहिये पतन किसका होगा? हमारा पैर धोकर पीये, जूठा खाये, मैं समझ लूँ कि क्या हर्ज है? उद्धार होवे तो होने दो। यह भाव ज्ञानीमें नहीं होता। जहाँ यह भाव है कि क्या आपत्ति है, वहीं मामला गड़बड़ है। इसका भी तिरस्कार कर दिया तो और आगे कीर्ति है। स्वामीजी बड़े अच्छे हैं। पुष्पकी माला पहनाते हैं तो वे फेंक देते हैं। कपड़ा भी फट जाता है तो वह नहीं लेते। पूजा-प्रतिष्ठा तो बहुत ही खराब है। कोई पूजा-प्रतिष्ठा स्वीकार करे तो समझना चाहिये कि स्वाँग भरा है। कोई अपमान करता है तो दुःख होता है, कोई मान करता है तो मनमें प्रसन्नता होती है। मानसे यदि परे हो गया तो आगे बड़ाई कहती है कि यहाँ तो मैं रोक ही दूँगी। बहुत-से नामधारी साधक ही इससे परे होते हैं। जो भी बड़े-बड़े नेता हैं उनको बड़ाई घेर लेती है, यही मनुष्यकी उन्नतिमें बाधक है। पक्षी है उसके पैरोंके सूत बँधा हुआ है। वह यदि चाहे कि मैं कहीं उड़ूँ तो वह उड़ता है, परन्तु खींचनेसे वापस आ जाता है। इसी प्रकार मान-बड़ाईने सभीको बाँध रखा है। संसाररूपी माया है, यही साधकोंके रस्सी बँधी हुई है, जैसे पतंगमें डोरी बँधी हुई होती है, वैसी ही मान-बड़ाईकी डोरीसे

मनुष्य बँध जाता है। यदि इससे भी आगे जाता है तो आगे ईर्ष्या नामकी एक राक्षसी बैठी है। वह यह सोचता है कि मेरी तो प्रतिष्ठा है ही, शरणानन्दजीकी मेरेसे भी अधिक है। उनकी मेरेसे अधिक प्रतिष्ठा क्यों है? स्वामीजी तो त्यागी हैं ही नहीं। मैं त्यागी हूँ, मेरी प्रतिष्ठा नहीं उनकी प्रतिष्ठा है। यह अन्धेर है। हमारी मान-बड़ाईमें कमी आवे तो कोई बात नहीं, दूसरोंकी प्रतिष्ठा नहीं होनी चाहिये। हमारेसे बढ़कर कोई है ही नहीं। आपके यहाँ कोई महात्मा है तो बताओ। फिर मुझे महात्मा क्यों नहीं मानते। मुझसे बढ़कर त्यागी और कौन होगा? यह अहंकारका तन्तु है। शरीरमें देहाभिमान है, जीवभाव है। शरीरमें आत्मबुद्धि अहंकारके ही कारण है। अहंकारके नाशसे ही इन सभीका नाश हो सकता है। यह अज्ञान है, इसका ज्ञानसे नाश कर देना चाहिये। यथार्थ ज्ञानसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। नामजप, स्वाध्याय, वैराग्य, उपरतिसे बड़ा लाभ है। भगवान्‌ने कहा है—

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥

(गीता १५। ३)

इस दृढ़ वृक्षकी जड़को दृढ़ वैराग्यरूपी शस्त्रके द्वारा काट देना चाहिये।

इस संसाररूपी वृक्षको तीव्र वैराग्यरूपी शस्त्रसे काट डालो। भीतरसे सम्बन्ध-विच्छेद करना ही काटना है। तत्पश्चात् फिर परमात्मामें मन लगाना चाहिये। उन्हींकी ही शरण हो जाना चाहिये। परमात्माकी शरण होनेसे ममता, अहंकारका अपने-आप ही अभाव हो जायगा। परमात्माकी चीज परमात्माको ही समर्पण कर देनी चाहिये। शरण हो गया तो उद्धार हो गया।

❑❑

विरह और प्रेमकी साधना

इस प्रेमके मार्गमें चले तो बारम्बार प्रसन्नता, रोमांच होता है, हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, गद्‌गद हो जाता है। भागवत, गीता, रामायणके श्लोक पढ़ें तो अर्थकी ओर ध्यान देनेपर उस भावसे भावित होकर प्रसन्नता, शान्ति और मुग्धता होती है। प्रथम अवस्थामें इसका अनुभव थोड़ा होता है और आगे बढ़नेपर अधिक होने लगता है।

विरह-व्याकुलताके मार्गमें भरत या गोपियोंका अनुकरण करे। युधिष्ठिरमें विरह-व्याकुलता नहीं थी। भरतजी प्रतीक्षा करते हैं, दुःखी होते हैं, चिन्ता कर रहे हैं, विलाप कर रहे हैं। अपने पाप, अवगुण और दुर्गुणोंको याद करके कहते हैं—मैं पापी हूँ, इस बातको जानकर भगवान् नहीं आये। भगवान्‌के सामने रोये, स्तुति और प्रार्थना करे। मिलनेके लिये व्याकुल होवे, जैसे मित्र मित्रके लिये, पति पत्नीके लिये, पत्नी पतिके लिये व्याकुल होते हैं, वैसे ही भगवान्‌से मिलनेके लिये व्याकुल होवे। सहन नहीं हो सके, ऐसा भाव दरसाये। भरत तथा गोपियोंकी नकल करे। स्त्रियोंमें गोपियोंकी और पुरुषोंमें भरतकी नकल करे। अशोकवाटिकामें सीताजीकी, शिशुपालके बारात लेकर आनेके समय रुक्मिणीजीकी विरह-व्याकुलता भी नकल करनेयोग्य है। प्रथम तो नकली विरह-व्याकुलता होती है, फिर समय-समयपर रोना और अश्रुपात होता है। वियोग और दुःखके कारण, भगवान्‌के नहीं आनेके कारण, विलम्ब करनेके कारण हृदय भी गद्‌गद हो जाय, जैसे जलके बिना मछलीकी तड़पन

प्रवचन—दिनांक ६। ५। १९४५, सायंकाल ६.३० बजे, गंगातट, स्वर्गाश्रम।

और व्याकुलता होती है, वैसे ही तड़पते हुए विनय, स्तुति और प्रार्थना करे। कभी-कभी विनोदमें यह भी कल्पना करे कि आप दयालु हैं, आप अन्तर्यामी हैं, मेरे हृदयको देख रहे हैं, फिर मुझे क्यों तड़पाते हैं? मैं क्या करूँ? मरूँ या गड़ूँ? उसीकी चिन्तामें रहे। जैसे ऋणीको रात्रिमें निद्रा कम आती है, दिनमें चैन नहीं पड़ता, वैसा ही भाव बनाये। अबतक भगवान् नहीं आये तो कब आयेंगे? शेष जीवन क्या ऐसे ही व्यतीत होगा। भगवान्के सिवाय कोई बात अच्छी नहीं लगे। सांसारिक वस्तु बुरी लगे और क्रोध आये। मनमें यह लहर उठे कि चलो यहाँसे। खाना, पहनना सब भाररूप हो जाय। शरीर, कंचन, कामिनी, भोग, ऐश, आराम, शौकीनीसे वृत्तियाँ हट जायँ और ये सब भगवान्की भक्तिमें बाधक मालूम दें। दुःखके कारण दूसरोंसे बुरा व्यवहार भी हो सकता है। दुःख है भगवान्के नहीं आनेका। यह दूसरी अवस्था बीचकी अवस्था है।

प्रेमके विषयमें प्रसन्नता बतलायी थी। मन-ही-मन भगवान्से खूब बातें हो रही हैं। प्रत्यक्षमें मनसे हो रही है, हँस रहा है और आशा तथा प्रतीक्षा है कि भगवान् आज नहीं आये तो कल आयेंगे और अवश्य मिलेंगे। खूब विश्वास है, निर्भर है। जैसे प्रह्लादजी, नरसी मेहताको कोई चिन्ता और विचार नहीं है। उसी प्रकारका भाव हो, भगवान्के साथ मन-ही-मन मिलन हो रहा है। रोमांच, अश्रुपात, प्रसन्नता और शान्ति है, यह रमण है, दिन-रात ऐसा करे। सब क्रियाओंके साथ-साथ भगवान्को समझे। प्रसन्नता, शान्ति, प्रेममें मुग्ध होकर फिरे। यह दोनोंके बीचकी अवस्था है।

इसके आगेकी अवस्था विरह-व्याकुलताकी तीसरी अवस्था है। जैसे कोई आदमी भगवान्के लिये विरहमें व्याकुल हो जाय,

भगवान्‌के बिना अपना जीवन भार मालूम दे। वह मरना आत्महत्या नहीं। खाना-पीना सब विषके समान है, देहकी स्मृति नहीं, बाहरी ज्ञान बहुत कम है। शरीर कहीं पड़ा रहे, खाओ या नहीं खाओ, न रातकी नींद और न दिनकी भूख है। न लज्जा, न भय, रात-दिन किसीका भय नहीं, निर्भय है। शरीरका ज्ञान नहीं, एक भगवान्‌से मिले बिना जीवन भार है। शरीरमें प्राण कहाँ अटक रहे हैं। जैसे सीताकी अवस्था है, एक-एक क्षण भार मालूम देता है। सीताजी हनुमान्‌से कहती हैं, मैं एक माह और प्रतीक्षा करती हूँ, फिर प्राणोंका त्याग कर दूँगी।

विरह-व्याकुलतामें कोई परवाह नहीं रहती। बाहरका ज्ञान कम हो जाता है। लोग चाहे सो कहें—परवाह नहीं। जैसे गोपियाँ कहती हैं कि लोग चाहे कुलटा ही कहें। वे शास्त्रकी मर्यादा छोड़ती नहीं, किन्तु उनसे मर्यादाका पालन नहीं हो पाता। बस, रात-दिन रोना ही होता है। कभी अपने ऊपर दोषकी कल्पना करती हैं और कभी भगवान्‌के ऊपर। प्रेममें भगवान्‌पर दोषारोपण करती हैं। रुक्मिणीजीका उदाहरण—शिशुपालके साथ विवाह नहीं किया—पपीहा स्वाति बूँदके सिवाय और जल नहीं पीता। **'तद् विस्मरणे परमव्याकुलता'** बार-बार छटपटाना भगवान्‌के बिना चैन नहीं पड़े।

मैं आशिक तेरे रूप पे बिन मिले सबर नहीं होती।

बाहरकी अवस्था पागलपन-सरीखी, बेहोशीकी-सी होती है, शरीर कृश हो जाता है, बाहरका ज्ञान कम हो जाता है। वास्तवमें वह उन्मत्त तथा पागल नहीं है। बाहरसे धूम-धड़ाका, मारना-काटना नहीं होता, परन्तु दूसरोंकी दृष्टिमें बाहरी ज्ञान कम पड़ जाता है। भगवान्‌की विरह-व्याकुलतामें देश-काल, खान-पान,

सोना—इनके ज्ञानसे रहित हो जाता है। केवल एक लगन रहती है—

लगन-लगन सब कोई कहे लगन कहावै सोय।
नारायण जा लगनमें तन मन दीजे खोय॥

यह विरह-अवस्थाकी बात है। अब प्रेमकी तीसरी अवस्था जैसे पागल आदमी हँसता है, बालककी-सी चेष्टा करता है, वह भगवान्‌से नित्य मिलता है, खूब विनोद करता है, कभी भगवान्‌को पकड़ता है, बातचीत करता है। ये सब भाव मानो प्रत्यक्ष हो रहे हैं। उसके आनन्द, प्रसन्नता, शान्ति और प्रेमका ठिकाना नहीं रहता। उसको प्रतीत होता है कि उसकी हर एक क्रियाके साथ भगवान् हैं। यहाँ मनसे प्रत्यक्ष देख रहा है। गाना, नाचना, प्रेम करना यह सब मन-ही-मन करता है। कभी-कभी बाहर भी करने लगता है। भगवान्‌की क्रियाके साथ अपनी क्रिया हो रही है। भगवान्‌की क्रिया प्रत्यक्ष नहीं, किन्तु मनसे कर रहा है। उसको बाहरका ज्ञान नहीं रहता। दिखावा अर्थात् नकली नहीं है। उसको भगवान् प्रत्यक्षकी तरह दीखते हैं। इस तरहका भाव हर समय रहता है। बाहरके उठने-बैठने-सोनेका ज्ञान बहुत कम है। इसका शरीर व्याकुलताकी भाँति कृश नहीं है, पीला नहीं है। वहाँ संयोग है, तड़पन नहीं है। विरह-व्याकुलतामें वियोग है, तड़पन है। यहाँ प्रसन्नता, शान्ति, आनन्द, विनोद, क्रीड़ा है, भगवान्‌के साथ है। भगवान्‌ने कहा है—

मच्चित्ता मद्‌गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (गीता १०।९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे

प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

हर समय प्रसन्नता और शान्ति है। ये स्वाभाविक उसमें रहते हैं। प्रेम है, मिलन है।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (गीता १०।१०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। विरहमें भरतजीकी दशा इस प्रकार हुई—

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

वहाँ विरह-व्याकुलतामें हनुमान्‌जी आये, यहाँ भगवान् आ जाते हैं। गोपियाँ भगवान्‌के विरहमें व्याकुल हुईं तो भगवान् ही प्रकट हो गये। विरह-व्याकुलता और प्रेमके मार्गमें शरीर और संसारकी लज्जा, खान-पान, सोना, जीना, बाहरी ज्ञानकी बेपरवाही दोनोंमें लगभग समान है। प्रेमके मार्गमें ज्यादा झुकाव नहीं है। बाहरी ज्ञान, बाहरी सँभाल भी होती है। नीतियुक्त बर्ताव भी हो जाता है, किंतु विरहकी बिचली अवस्थामें भूल हो जाती है। प्रेमके मार्गमें चकोरका उदाहरण है। संयोगमें हँसना, विनोद, शान्ति, आनन्द प्रधान है। वियोगमें रोना, तड़पना प्रधान है और भी थोड़ा-थोड़ा अंतर पड़ सकता है।

❑❑

भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं

परमात्माकी प्राप्तिको कठिन एवं कष्टसाध्य नहीं मानना चाहिये। यदि कहो कि सुगम है, फिर बहुत लोग क्यों नहीं प्राप्त कर लेते? बहुत-से आदमियोंको परमात्मा प्राप्त नहीं हुए, इसका मतलब यह नहीं है कि कठिन है। कोई कहे कि प्रयास बहुत किया, किन्तु परमात्मा नहीं मिले। बात यह है कि उन्होंने बहुत प्रयत्न नहीं किया। थोड़ेको ही अधिक मान लिया। श्रद्धा तथा विश्वास हो तो बिना प्रयास भी परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, परन्तु यह श्रद्धा होनी कठिन है। साधनसे ही विश्वास होता है, अतएव साधन करना चाहिये। मैं तो न्यायकी बात बताता हूँ। किसी प्रकार भी श्रद्धा हो जाय।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ (गीता ९। ३०)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

ईश्वरकी तथा महात्माकी कृपासे किसी प्रकार श्रद्धा हो जाय। पराभक्तिका अर्थ है परमात्माके स्वरूपका तत्त्वज्ञान, उसको मैं पराभक्ति मानता हूँ।

परमात्माकी प्राप्ति कठिन नहीं माने, इस विषयमें कभी हताश या निराश हो ही नहीं। जो निराश हो जाते हैं, उनके उत्साहके लिये यह कहना है कि भले ही उदास हो जायँ, यानी

प्रवचन—दिनांक १७। ५। १९४५, सायंकाल ६.३० बजे, गंगातट, स्वर्गाश्रम।

भगवान् नहीं मिले। अपने आचरणोंकी ओर देखकर उदासी लानेमें कोई हर्ज नहीं। साथ ही यह विश्वास रखे कि अभी नहीं मिले तो क्या हुआ, मिलेंगे अवश्य ही।

बड़ी सार बात है—बहुत चेष्टा की, इस जन्ममें नहीं मिलेंगे—यह बड़ी निकम्मी बात है। इस जन्ममें थोड़ा साधन करके निराश नहीं होना चाहिये। लाख वर्षका अन्धेरा एक क्षणमें चला जाता है। वैसे ही यह बात है कि अज्ञान अनादि होते हुए भी सान्त है। अज्ञानका स्वरूप यही है, यह मान लें। किसी प्रकारका अज्ञान हो, उस सबकी यही बात है, यह ठोस सिद्धान्त है। जैसे दिग्भ्रम सान्त होनेकी चीज है।

दूसरी बात परमात्माको प्राप्त पुरुषोंमें जो लक्षण हैं, उच्चकोटिके पुरुषोंमें, दैवी सम्पदावाले पुरुषोंमें जो लक्षण हैं, वे आपमें आ जाना कोई बड़ी बात नहीं। मनमें खूब उत्साह रखें। कठिन नहीं मानकर इनका सेवन करना चाहिये। हिम्मत बड़ी भारी चीज है। नेपोलियन बोनापार्ट फ्रांसमें एक साधारण आदमी था, परन्तु हिम्मतके कारण बहुत ही प्रसिद्ध राजा हो गया और आज भी वह प्रसिद्ध है। वह कहता था कि मेरे शब्दकोषमें असम्भव शब्द नहीं है। हिम्मतवाली चीज रखे, निर्भीकता बहुत मूल्यवान् है।

हम भगवान्‌की ओर चलते हैं तो भगवान् हमें अपनी ओर खींचते हैं। फिर काम सिद्ध क्यों नहीं हो रहा है? इसमें कारण है कि हम भगवान्‌को मानते नहीं, भूलसे ऐसा समझ रहे हैं, अतएव हर समय भगवद्भावकी जागृति करनी चाहिये।

❑❑

एकादशीव्रतकी विधि एवं महिमा

एकादशीके दिन हो सके तो मौन रहे, इससे जप-ध्यान होगा और वृत्ति बाहरकी ओर कम जायगी। यदि बोलना पड़े तो मितभाषी बने। ब्रह्मचर्यका पालन बड़े जोरोंके साथ रखे। अपनी स्त्रीसे भी आवश्यकता पड़े तो नीची गर्दनसे बात करे। सब प्रकारसे, सब इन्द्रियोंसे ब्रह्मचर्यका पालन करे, किसीकी हिंसा न करे। जो कुछ हिंसा करनी पड़ती है, वह अन्न-जलके लिये है, वहाँ भी त्याग करना पड़े तो मूल्यवान् है। एकादशीके दिन दातुन न करे, इससे भी हिंसा होती है और उसका अंश भी शरीरमें चला जाता है। मंजन भी नहीं करे, क्योंकि शरीरमें उसका अंश चला जाता है। दातुनसे एकादशी नष्ट हो जाती है।

भजन-ध्यान एक ऐसी चीज है, जिसमें हिंसा होती नहीं। अन्य सब आरम्भोंमें हिंसा होती है।

सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥ (गीता १८। ४८)

धूएँसे अग्निकी भाँति सभी कर्म किसी-न-किसी दोषसे युक्त हैं।

उस दिन भगवान्‌का भजन-ध्यान-सत्संग तो करना ही चाहिये। पाप तो छोड़ना ही चाहिये। झूठका, भोग-आरामका त्याग करे। एकादशीको परम तप करे, हो सके तो रातको जागरण करे। एकादशीको जागरण करनेका ज्यादा माहात्म्य है। भगवान्‌के नामका जप, पूजा, स्तुति, प्रार्थना और भगवान्‌की भक्तिमें ही रात बितावे। दिनमें भक्ति की और रातको भी की तो ज्यादा माहात्म्य है। रातभर भजन न हो सके तो रातको बारह बजे ही सोवे। शयन करे तो पृथ्वीपर शयन करे, चारपाई और

गद्दोंपर नहीं। सब भोगोंका त्याग करे। इन्द्रियोंको काम दे। कानोंसे भगवान्‌के नाम-गुणका श्रवण करे, वाणीसे भगवान्‌के नामका जप करे, महिमाका गान करे और मनसे भगवान्‌का ध्यान करे। पवित्रतासे रहे। गंगामें तीन समय स्नान करे, अन्य दिन न हो सके तो एकादशीको तो करना ही चाहिये और सारा दिन पवित्र व्यवहारमें बितावे। हृदय पवित्र रखे। काम, क्रोध, लोभका बुरा भाव नहीं आवे। व्यवहारमें काम, क्रोध, द्वेषका काम नहीं हो। हृदयका भाव भी पवित्र होना चाहिये। सुख, दुःख, हानि, लाभ जो कुछ आकर प्राप्त हो, उसको भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार समझकर बर्ताव करे। भोगोंकी ओर तो दृष्टि उठाकर भी नहीं देखना चाहिये। इस प्रकार तपस्या करनी चाहिये। भगवान्‌के नामका जप, स्वरूपका ध्यान और स्वाध्याय करे। बन सके तो दूसरोंका उपकार करे। अतिथि, दुःखी, माता-पिता, गुरुकी सेवा करे। व्यवहार करे तो विनयका करे और भीतरमें त्यागका भाव रखे। अपना कर्तव्य समझकर व्यवहार करना चाहिये। शरीर, वाणी, मनसे व्यर्थ चेष्टा नहीं करनी चाहिये। व्यर्थके संकल्प, वाणीसे व्यर्थ बोलना—यह नहीं करे। बोले तो नम्रतापूर्वक बोले। कोई भी अपराध कर दे तो क्षमा कर दे। कोई हमारी मान, बड़ाई करे तो उनको स्वीकार न करे, इस बारेमें निश्चय दृढ़ रखना चाहिये।

ये बातें सदा करनी चाहिये। ये नित्य नहीं हो सके तो एकादशीको अवश्य करनी चाहिये। उपवास नहीं कर सके तो एक बार ही भोजन करे। उपवास करनेवालेको द्वादशीके दिन भी एक बार भोजन करना चाहिये।

जिस एकादशीको तीनों तिथियाँ पड़ जायँ तो उसे त्रिस्पर्शी

एकादशी कहते हैं। तीन तिथि एक दिन हो, उस एकादशीका बड़ा माहात्म्य है। तीनों तिथियाँ एक दिन आ जायँ, उस दिन बिलकुल उपवास करे तो यह सबसे बढ़कर है, किन्तु एक बार भोजन कर ले तो दोष नहीं। त्रयोदशीको भोजन कर ले। एकादशीके दिन अन्नमात्र खाना पाप बतलाया गया है।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्या समानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति तानि वै हरिवासरे॥

ब्रह्महत्यातकके जो कोई पाप हैं, वे सारे एकादशीके दिन अन्नमें आकर बैठ जाते हैं।

बीमारके लिये सब बातोंकी छूट है। आप एकादशी नहीं करेंगे तो पाप नहीं लगेगा। अन्न खानेसे पाप लगेगा। एकादशीसे पापोंका नाश होता है, यह बताया है। सकाम फल और निष्काम फल बतलाया है। जो निष्कामभावसे एकादशी करता है, उसके अन्तःकरणकी शुद्धि होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। सकामभावसे कर्म करे तो उसको वह फल मिलता है।

❑❑

भगवान्‌की एवं गीताजीकी विशेषता

जनकपुरमें धनुष तोड़ना कोई बड़ी बात नहीं थी। कोई भी श्रेष्ठ पुरुष साधारणकी तरह विचरे, वही प्रभावकी बात है। संसारमें महत्त्व पाकर प्रायः अभिमान आ जाता है। परशुरामजीको अपना प्रभाव दिखाया, धनुष अपने-आप चढ़ गया, वे शान्त हो गये। अध्यात्मरामायणमें दूसरे प्रकारका विषय है। वहाँ परशुरामजी नहीं आये, राजा लोग नहीं आये, केवल धनुष लाया गया, उसे भगवान्‌ने तोड़ दिया, वहाँ परशुरामजी रास्तेमें मिले। लक्ष्मणजीने वहाँ कुछ भी नहीं कहा है। भगवान्‌ने धनुष चढ़ा दिया और कहा—इस तीरको कहाँ छोड़ूँ, लक्ष्य खाली नहीं जायगा। परशुरामजीने कहा—मैंने पुण्यलोकोंकी प्राप्तिके लिये जो कुछ पुण्यकर्म किये हैं, वे सब आपके इस बाणके लक्ष्य हों। वहाँ रामजीने बहुत कठोर शब्द कहे हैं, जितना तोड़नेका महत्त्व है उससे अधिक महत्त्वपूर्ण परशुरामजीका शान्त हो जाना है। भगवान्‌के राजतिलक स्वीकार करनेमें, वनमें जानेमें महत्त्व है, रहस्य है, प्रभाव है। रहस्य क्या है, जैसे सीताजीने कहा कि मैं भी आपके साथ चलूँगी, लक्ष्मणने भी यही कहा। माताजी कहती हैं—न जाओ, भगवान् कहते हैं, जाऊँगा। इसमें भी रहस्य है। दशरथजीने भी फिर बुलाना चाहा। जहाँ-जहाँ स्वार्थका त्याग है, वहीं रहस्य है, दशरथजीकी यदि दूसरी बात मान लेते तो कोई महत्त्वकी बात नहीं रहती। बड़ोंकी आड़ लेकर, स्वार्थकी आड़ लेकर काम तो सारा संसार कर ही रहा है। बड़ोंकी आज्ञापालनका महत्त्व उसीमें है, जिसमें आपत्तिका सामना करना

प्रवचन—प्रथम वैशाख शुक्ल ५, संवत् १९९१, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

पड़े। राज्यको लात मारकर वनमें जानेमें भी रहस्य है। लक्ष्मणने कहा, मैं भी चलूँगा। भगवान्‌ने कहा—नहीं, तुम यहीं रहो। पहले आज्ञा देते हैं रहो, फिर स्वीकार करते हैं—चलो। आज्ञा परिवर्तन करनेमें बड़ा रहस्य है। प्रेम एक ऐसी चीज है कि उसमें नीतिका भी त्याग हो जाता है। यह भी नीति है। जब यह मालूम हो गया कि यह मेरे वियोगसे बहुत दुःखी होगा, तब ले जाना स्वीकार कर लिया। नहीं कहनेसे लक्ष्मणजीकी उत्कण्ठा बढ़ी, कोई भी अच्छा पुरुष अपने साथ कहीं जानेके लिये नहीं कहता। आग्रह, श्रद्धा, उत्साहसे जाना ही उत्तम है। आज मैं बद्रीनारायण जानेके लिये विचार करूँ और दूसरोंसे भी कहूँ कि आप भी चलें तो कोई विशेषता नहीं है। एकने कहा कि मैं भी चलूँ। मना करनेपर उत्साह और आग्रहसे जाय तो विशेष लाभ है। बहुत उत्कण्ठा होनेपर ही सीताको भगवान्‌ने चलनेके लिये आज्ञा दी। कौसल्या माताने भी नहीं जानेके लिये आज्ञा दी, पर भगवान्‌ने कहा कि मैं पहले पिताजीकी आज्ञा मानकर फिर लौटकर आपकी आज्ञा स्वीकार करूँगा। दशरथजीको विलाप करते हुए छोड़कर भगवान् चले गये, इसीका प्रभाव है कि जब भगवान् आते हैं तो सब चकोरकी भाँति देखनेके लिये उत्सुक हो रहे हैं। वियोगसे प्रेम बढ़े तो वियोग उत्तम है, साथ ले जानेसे प्रेम बढ़े तो साथ ले जाना उत्तम है। भगवान्‌का प्रभाव ही भरतजीपर पड़ा, जिससे अन्तमें वह प्रेम प्रकट हुआ। रामजीका बड़ा सराहनीय व्यवहार है। जहाँ-जहाँ गये, बड़े प्रेमका अद्‌भुत व्यवहार किया, शबरीके साथ कैसा प्रेम किया। दिखला दिया कि मेरी भक्तिमें जाति-पाँतिकी कोई बाधा नहीं है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।

सुग्रीवको कहा—

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

केवल कहा ही नहीं, अपितु करके दिखा दिया। लंका जीतकर विभीषणको राज्य दे दिया। समुद्रमें भगवान्‌ने अपना प्रभाव दिखाया है। सीता-विरहकी कुछ भी परवाह न करके पहले सुग्रीवका काम किया। भरतके प्रेमके सामने विभीषणके अनुरोधको भी नहीं माना। दूसरोंका प्रयोजन पूर्ण करनेके लिये खूब चेष्टा करते हैं। अपने प्रयोजनकी बात ही नहीं है। सारी कथामें नीति, रहस्यादि भरा हुआ है। एक-एक लीलाका अनुकरण करना चाहिये। बड़े आनन्दसे वनमें जाते हैं, आज मैं धन्य हूँ, पिताकी आज्ञा और माताकी सम्मतिसे वनको जा रहा हूँ। कैसे विनय, प्रेमके साथ आज्ञा मानते हैं। भगवान् प्रकट होकर, प्रभाव प्रकट करके मर्यादासे स्वयं अर्जुनको अपना रहस्य बताते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४। ६—९)

मैं अजन्मा और अविनाशी-स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त

प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ। हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

अपना रहस्य खोलनेके लिये ही भगवान् अर्जुनके प्रति अपना रहस्य कहते हैं। साधुओंका उद्धार और दुष्टोंका संहार कोई बड़ी बात नहीं है, परन्तु धर्मको स्थापित करनेके लिये भगवान् ही कह सकते हैं। कहीं भी गीता-जैसा उपदेशका संग्रह नहीं है। जो मेरे दिव्य कर्म और जन्मको तत्त्वसे जान जाता है, वह संसारसे तर जाता है। भगवान्‌की क्रियामें, चालमें सुहृदता भरी हुई है। दया, उदारता प्रकट होनेमें भी यही बात है। बिना हेतु अनाथ, दुःखी सबको चाहते हैं। जो जैसे उनको चाहता है वैसा ही व्यवहार करते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके मालिक छोटे-से-छोटे आदमीके साथ प्रेमका व्यवहार करते हैं। कितना प्रभाव, प्रेम, महत्त्व भरा हुआ है। प्रेममें छोटा-बड़ा कौन है। भगवान् कहते हैं—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥ (गीता १४। २७)

उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्यधर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका आश्रय मैं हूँ।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि॥ (गीता १८। १९)

गुणोंकी संख्या करनेवाले शास्त्रमें ज्ञान और कर्म तथा कर्ता गुणोंके भेदसे तीन-तीन प्रकारके ही कहे गये हैं, उनको भी तू मुझसे भलीभाँति सुन। अन्तमें स्पष्ट कह दिया—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६५-६६)

हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। कितना प्रभाव है '**मन्मना भव**' यह कौन कह सकता है।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

(गीता ९। ११-१२)

मेरे परमभावको न जाननेवाले मूढ लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको तुच्छ समझते हैं, अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके लिये मनुष्यरूपमें

विचरते हुए मुझ परमेश्वरको साधारण मनुष्य मानते हैं। वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिको ही धारण किये रहते हैं।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥ (गीता १०।२)

मेरी उत्पत्तिको अर्थात् लीलासे प्रकट होनेको न देवतालोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब प्रकारसे देवताओंका और महर्षियोंका भी आदिकारण हूँ।

अर्जुनके वचनोंमें कितना प्रभाव है। अर्जुन कहता है, भगवान् स्वीकार करते हैं कि मैं नारायण हूँ। भगवान्‌ने अर्जुनसे यह गोपनीय, बड़े रहस्यकी बात कही, किन्तु भगवान्‌के प्रभावको देखकर अर्जुन भय करने लग गया।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥

(गीता ११।४१)

आपके इस प्रभावको न जानते हुए आप मेरे सखा हैं, ऐसा मानकर प्रेमसे अथवा प्रमादसे भी मैंने 'हे कृष्ण!', 'हे यादव!', 'हे सखे!' इस प्रकार कुछ बिना सोचे-समझे हठात् कहा है।

मुझ साक्षात् परमात्मा, परमेश्वरसे डरनेका क्या काम है। मैं तो अपराध ही नहीं समझता, यह प्रेम है। अर्जुन तो घबड़ा उठा था।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १०।४१-४२)

जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और

शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान। अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।

दसवें अध्यायमें २० से ३९वें श्लोकतक तो साधारण विभूतियाँ बतलायी गयी हैं। भगवान्ने आगे जाकर इनका तिरस्कार कर दिया कि बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। तुम यह मत समझना कि मैं साधारण मनुष्य हूँ। जैसे अग्नि वस्त्रमें नहीं बाँधी जा सकती, वैसे ही कृष्ण नहीं बाँधे जा सकते। भगवान्ने कहा कि धृतराष्ट्र! तेरा पुत्र दुर्व्यवहार कर रहा है, यह मुझे बाँधना चाहता है। मुझे अकेला समझकर मारना चाहता है, सारे देवता मेरेमें हैं। फिर अपना रूप दिखाया, लोग मूर्छित हो गये। रूपको समेट लिया, मूर्छा खुल गयी। भगवान्ने सन्धि नहीं करायी, इसलिये उत्तंकने कहा कि मैं तुम्हें शाप देता हूँ। भगवान्ने कहा—मैं नहीं चाहता कि आपका तप नष्ट हो जाय। मैं कृष्णरूपमें साक्षात् परमात्मा हूँ। आप इस महत्त्वको नहीं जानते, इसीलिये ऐसा कहते हैं। सारे नक्षत्र, सारी पृथ्वी प्रभुकी ही है। उत्तंकके प्रार्थना करनेपर भगवान्ने उन्हें विराट् स्वरूप दिखलाया। बिना हेतु ही भगवान्ने जबरदस्ती पीछे पड़कर अर्जुनके मनमें प्रभाव जमाया, यह बड़ी बात है। दसवें अध्यायमें पहले तो विभूतियाँ बतलायीं, फिर अपना प्रभाव दिखाया। संसारमें उदारता देखकर हम प्रशंसा करते हैं। सारे संसारकी दया इकट्ठी करनेपर भी उस दयासागरकी दयाके एक बूँदके समान भी नहीं हो सकती। सहस्र सूर्य एक साथ उदय हों तो भी उस ईश्वरकी एक किरणके समान भी नहीं होता, गोपियोंका, गोपोंका, सारे संसारका प्रेम उस प्रेमसागर प्रभुकी एक लहरके

समान भी नहीं है। उनके प्रभावकी महिमा कौन गा सकता है। हम जिसे उत्तम समझते हैं, उसका उदाहरण देते हैं। पर उसके सामने ये कुछ भी नहीं है। कितना भारी प्रभाव है। विषदात्री पूतनाको भी मुक्ति दी, नीच व्यवहार करनेपर भी उसके साथ प्रेमका, दयाका व्यवहार किया। एक राजा सिपाहीके वेशमें आकर उदारतासे दु:खियोंका प्रबन्ध करे तो उसको सुनकर मनमें आनन्द होता है। ऐसे व्यवहारकी कितनी प्रशंसा करते हैं। उनके प्रभावको कौन कह सकता है। वहाँ वाणी, मन, बुद्धि सब रुक जाते हैं। किसीकी शक्ति नहीं कि उसका चिन्तन भी कर सके।

इतने प्रेमी हैं, सामर्थ्यवान् होकर प्रेमके वशमें उनके साथ क्रीड़ा करते हैं। गोपियोंके, गोपोंके साथ नाच रहे हैं, कितना प्रेम भरा हुआ है। जैसी लीला वे चाहते हैं, वैसी करनेको तैयार हैं। ऐसे प्रभावशालीको जानकर फिर हम रुपयोंमें प्रेम करते हैं। जब यह बातें सत्य हैं, हमें विश्वास है, फिर दूसरे कामसे हमें क्या प्रयोजन होना चाहिये। भगवान् सारे संसारको आनन्दित करनेवाले हैं और जो भगवान्‌को आह्लादित कर दे, वही प्रेम है। रामायणमें भगवान् कहते हैं—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानइ जोई॥

गीतामें भगवान् कहते हैं—

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ (गीता १२। १४)

जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

भक्तमें दो बातें प्रधान होनी चाहिये। प्रभुमें मन-बुद्धि लगा देना, उनकी प्रसन्नतामें प्रसन्न होना—जो ऐसी भक्ति करता है, प्रभु उसके आधीन हो जाते हैं। तीस, चालीस वर्ष पहले गीताके जाननेवाले

बहुत कम थे, कुछ लोग केवल दसवें अध्यायका पाठ करते थे। अर्थका पता ही नहीं था। दसवें अध्यायमें भगवान्‌के प्रभावकी जितनी बात है, उतनी अठारहवेंको छोड़कर किसीमें नहीं है। नवें अध्यायके अन्तमें **'मन्मना भव'** ये वचन कहे। फिर प्रारम्भमें ही अपना प्रभाव दिखाया, फिर भजनेकी आज्ञा दी। दसवेंके अन्तिम दो, नवें अध्यायका अन्तिम, अठारहवेंका ६५-६६ ये श्लोक अतिशय महत्त्वके हैं। चौदहवें अध्यायमें जैसी गुणकी बात आयी, एक-एक श्लोकमें ऐसे रहस्य हैं कि एकके धारणसे ही बेड़ा पार हो जाय। आवश्यकता थी इसलिये आसुरी सम्पदा कही, नरकके तीन द्वार हैं, नरकमें ले जानेके लिये महारथी हैं—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ (गीता १६। २१)

काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।

धारणकी भी बात, त्यागनेकी भी बात बतलायी गयी है। जितने आदि और अन्तमें अध्याय हैं उनमें बहुत महत्त्वकी बात भरी हुई है, अन्तिम श्लोकमें पूर्णाहुति है। गीताके अन्तिम श्लोकमें कितना प्रभाव दिखलाया है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (गीता १८। ७८)

हे राजन्! जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—ऐसा मेरा मत है। भगवान्‌का गीता-जैसा प्रभाव कहीं नहीं है।

❑❑

महापुरुषोंमें श्रद्धा और भावकी विशेषता

यह ऐसा प्रकरण है चाहे नित्यप्रति कहा जाय। हम उन महापुरुषोंके लीला-रहस्यको समझते ही नहीं। यदि थोड़ा भी समझमें आ जाय तो वे जो भी क्रिया करें—उनका खाना, पीना, बोलना, चलना, उन सबमें उपदेश—शिक्षा भरी रहती है, प्रेम भरा रहता है और रहस्य भरा रहता है। समझनेके साथ ही उनकी सारी क्रिया इतनी आनन्ददायक हो जाय कि हम उसे देख-देखकर आह्लादित होते रहें। आनन्द समाये ही नहीं। चाहे कैसी भी क्रिया हो, शास्त्रके अनुकूल हो, प्रतिकूल हो, हमारी दृष्टि ही नहीं जायगी। जैसे अनन्य प्रेम करनेवाली एक स्त्री है, उसका एकान्तमें पतिके साथ वार्तालाप होता है। पतिकी हर एक क्रिया उस स्त्रीके लिये आनन्ददायक होती है। उसकी प्रत्येक क्रिया आनन्दसे भरी रहती है। उसको देख-देखकर वाणी गद्गद हुई रहती है। नेत्र डबडबाये रहते हैं। अपने आपका ध्यान नहीं रहता।

जिसमें जितनी श्रद्धा होती है, उतना ही वह उसके रहस्यको समझता है। जितना रहस्य समझमें आता है उतना ही उसका परिवर्तन हो जाता है। गोपियाँ भगवान्की क्रिया, स्वरूप सभीको देखकर आनन्दित होती थीं। गोपियाँ भगवान्की प्रत्येक क्रियाको देखकर आह्लादित होती थीं। वहाँ यह बात नहीं है कि यह शास्त्रके अनुकूल है, यह प्रतिकूल है। वहाँ तो यह दृष्टि ही नहीं थी।

जहाँ प्रेम है वहाँ कानून, नीति, आदर, सत्कार यह सब कलंक है। जहाँ ये सब हैं, वहाँ प्रेम नहीं है। वह तो लौकिक दिखाऊ प्रेम है, सभ्यता है। भगवान् किसी भी स्वरूपमें हों, हैं तो

प्रवचन—दिनांक ९/११/४१।

भगवान् न! भगवान् जब गौओंको चराकर आया करते थे, गोधूलिमें सने रहते थे, सारे शरीरपर धूलि जमी रहती थी। गोपियाँ इस स्वरूपको देखकर मोहित हो जाती थीं। यदि धूलिसे धूसरित होनेसे सुन्दरता आती हो तो हमलोग भी लगावें। बात तो यह थी कि वे भगवान् थे, वे चाहे जिस रूपमें हों, चाहे उन्हें मिट्टी खाते देखें, चाहे रोते देखें, चाहे मक्खन खाते देखें, वह तो उनकी लीला है। श्रद्धालुको तो सारी बात लीला दीखती है। जैसे बाजीगर नाटक करता है। वह बाजीगर जिस प्रकार जमूरेसे करवाना चाहता है जमूरा वही करता है। उनके राग–द्वेष नहीं होता।

यह जो उदाहरण दिया जाता है कि कुँआ तेरी माँ मरी, मरी। कुँआ तो जड़ है पर जमूरा तो चेतन है। उसकी सारी क्रिया बाजीगरके संकेतके अनुसार होती है। इसी प्रकार श्रद्धालु पुरुषसे उसकी सारी क्रिया अपने श्रद्धेयके संकेतके अनुसार स्वाभाविक ही हुआ करती है। वह करता नहीं, हुआ करती है। जैसे मनुष्य जिधर जाता है, उसकी छाया पीछे–पीछे चलती है। कठपुतलीकी सारी क्रिया सूत्रधारके आधीन रहती है। इसी प्रकार भगवान्के भक्तकी प्रत्येक क्रिया भगवान्के अनुकूल रहती है, भगवान्के प्रतिकूल नहीं।

ऐसे ही महात्मा पुरुष होते हैं इनके तत्त्वको हम जान जायँ तो हमारी भी क्रिया उसी तरह होने लगे। अपना कोई मन ही नहीं रहे, जिसके अनुकूल और प्रतिकूल हो। उसका मन तो स्वामीके आधीन हो जाता है। उसकी फिर निजकी इच्छा रही ही क्या। जब निजकी इच्छा ही नहीं रही, तब अनुकूलता–प्रतिकूलता क्या रहे। कठपुतलीमें अनुकूलता, प्रतिकूलता रहनेकी गुंजाइश है क्या? जिसकी ऐसी स्थिति स्वाभाविक हो जाती है, वह फलरूप अवस्था है। आरम्भमें तो करना पड़ता है फिर स्वाभाविक ही यह

अवस्था हो जाती है। जैसे पहले जप किया जाता है, फिर अभ्यास दृढ़ हो जाता है तो स्वाभाविक जप होने लगता है, प्रयत्न नहीं करना पड़ता। ऐसे ही श्रद्धालुकी ऐसी स्थिति स्वाभाविक हो जाती है। इस बातको समझानेके लिये एक काल्पनिक कथा है।

एक ब्राह्मण देवता थे। वे पढ़े नहीं थे। बुद्धिमान् भी नहीं थे। खर्चका अभाव हो गया, तब ब्राह्मणीने कहा—यहाँका राजा बड़ा दाता है। आप उनके पास जाइये। वे ब्राह्मणोंका बड़ा सत्कार करते हैं। वास्तवमें यह बात भी थी, पर ब्राह्मणको डर था कि मुझे बोलना नहीं आता, लोग हँसी उड़ायेंगे। पर ब्राह्मणीके आग्रहसे वे राजाके पास गये। स्त्रीने एक पुस्तक दे दी। ब्राह्मणने देखा कि मैं पढ़ना ही नहीं जानता, फिर इसका क्या करूँगा। स्त्रीने कहा कुछ हर्ज नहीं, ले जाओ। ब्राह्मणने सोचा कि मैं राजाके यहाँ जाऊँगा तो सिपाही मारेंगे। वे बाजारमें एक टूटे मकानमें जाकर छिप गये। एक कुम्हारका गधा खो गया था। वह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस मकानमें आया। ब्राह्मणको देखा, सोचा ये महात्मा हैं। ब्राह्मणको एक रुपया देकर कहा महाराज यह भेंट है, मेरा गधा मिल जाय, ऐसा उपाय बता दीजिये। ब्राह्मणने देखा कि यह रुपया देता है, इसे ऐसी दवा बता दो, जिससे यह मर जाय, नहीं तो मुझे मारेगा। ब्राह्मणने कहा तुम जाकर एक तोला धतूराका बीज खा लो। कुम्हारको तो महात्माके वचनोंमें श्रद्धा थी, धतूरेका बीज खा लिया। रातमें जब नशा हुआ तो जंगलमें घूमने लगा। घूमते-घूमते उसका हाथ अपने गधेपर ही पड़ गया। गधा मिल गया। एक दिन कुम्हार बनियेके पास गया। बनिया उदास बैठा था। कुम्हारने कहा उदास क्यों हो? उसने कहा मैंने हीरा खरीदा था, वह खो गया। मिल नहीं रहा है। कुम्हारने

कहा एक महात्मा पुरुष हैं, मेरे साथ चलो वे बता देंगे। उन्होंने मेरा गधा बता दिया था। कहा थोड़ी भेंट ले लो। उधर क्या हुआ कि ब्राह्मण ब्राह्मणीके पास गये। एक रुपया देकर कहा— राजाने कहा है कि फिर मत आना। पर ब्राह्मणीने फिर आग्रह किया तो फिर आये। उसी मकानमें आकर छिपकर बैठ गये। इधर बनिया और कुम्हार आये, पूछा महाराज इस बनियेका हीरा खो गया है, इसका पता बता दीजिये। ब्राह्मणने पंचांग उठाया। कुम्हार तो समझता नहीं था, बनियेने देखा कि ये तो सीधा पंचांग देखना नहीं जानते। कुम्हारने कहा महात्माकी तो उलटी ही गति होती है। बनियेको कहा तुम सीधा देखो, तुम्हारी महात्मामें श्रद्धा नहीं है। तब बनियेने कहा अच्छा मेरा अपराध हुआ। ब्राह्मणसे पूछा महाराज क्या करना चाहिये, आप बताइये। ब्राह्मणने कहा तुम एक तोला धतूरेका बीज खा लो। बनियेने कहा ठीक है। पर विचार किया कि धतूरेका बीज खानेसे नशा हो जायगा तो मर जाऊँगा। कुम्हारसे कहा तो कुम्हारने थप्पड़ मारी। मूर्ख तेरा महात्माके वचनमें विश्वास नहीं है, तेरा हीरा नहीं मिलेगा। मैंने भी तो धतूरेका बीज खाया था, मैं तो जीता बैठा हूँ। महात्माके कहनेके अनुसार खानेवाला मरेगा क्या? चाहे विष भी खा जाओ। बनियेने धतूरेका बीज खा लिया। रातको नशा हुआ, वह इधर-उधर घूमने लगा। उसका हाथ आलमारीके ऊपर पड़ा, जहाँ उसका हीरा रखा गया था, मिल गया तो बड़ा प्रसन्न हुआ। इधर ब्राह्मणने ब्राह्मणीको ले जाकर इक्कीस रुपये दिये। कहा कि राजाने कहा है कि अब मत आना। ब्राह्मणीने कहा राजा तो ऐसे ही कहा करते हैं, आपको जाना चाहिये।

बनिया राजाके पास जाया-आया करता था। बनियेको प्रसन्न

देखकर राजाने पूछा कि क्या बात है। कल तो उदास थे, आज प्रसन्न क्यों हो। बनियेने कहा कि मेरे हीरे खो गये थे, एक महात्मा हैं इनकी कृपासे मिल गये। राजाने कहा ऐसे महात्माका मुझे भी दर्शन करा दो। बनियेने ब्राह्मणसे कहा कि महाराज आपका दर्शन करना चाहते हैं, आप चलेंगे क्या? ठीक है बारह बजेका समय दे दिया। बनियेने जो एक सौ रुपये भेंट दिये थे, लाकर घरमें रखे। ब्राह्मणीने कहा नित्य जाया करो। ब्राह्मणके मनमें विचार हुआ कि राजाके पास जाना ठीक नहीं, ऐसा अनुचित व्यवहार करो राजा बुलाये ही नहीं। इतनेमें बनिया आ गया, कहा ग्यारह बजेका समय हो गया, चलें। मनमें विचार किया कि राजाके चलकर जूता लगाओ, चाहे जो हो। अब शहरमें उसका दबदबा हो गया कि पगलेसे ब्राह्मणका इतना मान हो गया है। अब सब उसके दर्शनके लिये उत्सुक हो रहे हैं। ब्राह्मण घरसे जूता उठाकर भागता हुआ चला। बनियेने कुम्हारसे पूछा कि जूता लेकर क्यों जाते हैं। कुम्हारने कहा—मूर्ख! महात्माओंकी क्रिया समझमें नहीं आती। उनका रहस्य पीछे खुलता है। ब्राह्मणने राजाके सिरपर जूता मारा, सारी सभामें हल्ला मच गया कि यह क्या बात है। राजाकी पगड़ी सिरसे गिर गयी, उसमेंसे साँप निकला। बात यह थी कि उनकी पगड़ी जब खूँटीपर रखी हुई थी तो उसमें साँप प्रवेश कर गया था। उसीको राजा साहबने सिरपर रख लिया था। यदि ब्राह्मण जूता मारकर थोड़ी देरमें उसे नहीं गिराते तो साँप महाराजको काट लेता। सब आश्चर्यचकित हो गये। महाराजने हजारों मोहरें भेंट कीं। बनिये और कुम्हारने मोहरें ब्राह्मणके घर पहुँचा दीं।

कुम्हारको तो जो कुछ उस ब्राह्मणकी क्रिया होती थी,

आनन्ददायक ही दीखती थी। श्रद्धाका प्रकरण समझानेके लिये यह उदाहरण है। सारी विपरीत क्रिया कुम्हारको अनुकूल दीखती है। गधा खोजनेके लिये धतूरेका बीज खानेको कहना यह कौन-सी युक्ति है। राजाके बुलानेपर जूता मारना यह कौन-सी युक्ति है, यह तो ब्राह्मणके प्रारब्धसे तुक मिल जाता है। जितनी भी उसकी क्रिया होती, कुम्हारको तो सब अनुकूल ही दीखती। यह तो नकली महात्माओंकी बात है, असली हों उनकी तो बात ही क्या है। श्रद्धा ऐसी होनी चाहिये, शंकाकी गुंजाइश ही न रहे। कुम्हारको ब्राह्मणकी प्रत्येक क्रिया आनन्ददायक दीखती थी। इसी प्रकार श्रद्धालुको महात्माकी प्रत्येक क्रिया आनन्ददायक ही दीखती है।

महात्माकी जो कुछ क्रिया है, उनका किसीके साथ भी सम्बन्ध है, उनके द्वारा जो कुछ भी वस्त्र छुआ जाता है, श्रद्धालुको उसमें अलौकिकता दीखती है। महात्माके साथ जिन चीजोंका संसर्ग हो जाता है, उसके भीतर उसको अलौकिकता प्रतीत होने लगती है।

गंगाका जल है और नदीका भी जल है। विधर्मियोंको तो दोनों एक-सा ही जल दीखता है। हमारे पास भी एक लोटेमें लाकर दोनों जल रख दें तो हम पहचान नहीं सकते, परन्तु हमें मालूम हो जाता है कि यह गंगाजल है तो झट हमारा दूसरा ही भाव हो जाता है। रास्तेमें जाते हैं, पूछा कि यह कौन-सी नदी है, बताया गंगा है तो तुरंत दूसरा ही भाव हो जाता है। गंगाका ज्ञान होनेके बाद श्रद्धाके कारण भाव बदल जाता है। जिस चीजका हमें ज्ञान है उसमें शुरूसे ही दूसरी बात है। हम जा रहे हैं, रास्तेमें वृक्ष आते हैं। हम लघुशंकाके लिये बैठे, तुलसीका पौधा दीखा तो झट खड़े हो जाते हैं कि यह तो तुलसीका पौधा

है। यहाँ लघुशंका कैसे करें। विधर्मीके यह भाव ही नहीं होता। जिसके भाव होता है, उसकी क्रिया बदल जाती है। हम मन्दिरोंमें जाकर भगवान्‌की मूर्तिको देखकर प्रणाम करते हैं। विधर्मी उसे तोड़नेकी चेष्टा कर सकता है।

श्रद्धा होनेसे उसकी क्रिया बदल जाती है। आँख वैसी ही विधर्मीके है, वैसी ही हमारे है। कुछ अन्तर नहीं है। दीखनेमें कुछ अन्तर नहीं दीखता, पर भाव होनेसे क्रिया बदल जाती है। एक श्रद्धालु महात्माको देख रहा है, दूसरा भी देख रहा है, देखनेमें अन्तर नहीं है। पर श्रद्धालुके नेत्र वे ही होते हुए भाव दूसरा होनेसे दूसरी दृष्टिसे देखता है। उस महात्माको स्पर्श करके जो वायु चलती है उस वायुके लगनेसे मुग्ध हो जाता है। वही वायु दूसरोंके भी लगती है पर उनके वह भाव नहीं होता। नदी बह रही है, हमलोग वहाँ स्नान कर रहे हैं। एक महात्मा भी स्नान कर रहे हैं, उन महात्माको छूकर जो जल आ रहा है, वह जल श्रद्धालुको स्पर्श करता है तो वह गंगाजलसे भी बढ़कर उसे समझता है। प्रत्यक्षमें गंगाजलसे बढ़कर उसे दिखायी देता है। उसकी स्पर्श की हुई धूलिको भी वह श्रद्धाके कारण दूसरी दृष्टिसे देखता है।

अक्रूर भगवान्‌की चरणधूलिको देखकर रास्तेमें कूद पड़े। अन्य लोग भी उस रास्तेसे जाते थे, पर उन्हें विशेषता नहीं दीखती थी, अक्रूरजीको दीखती थी। वे उस धूलिमें लोटने लगे।

भरतजी जब भगवान्‌के चरण-चिह्नोंको देखते हैं तो उन्हें भगवान्‌के मिलने-जैसा आनन्द होता है। मस्तकपर लगाते हैं। उनकी दशा विलक्षण हो गयी। जड़ चेतन और चेतन जड़ हो गये। वहाँ चरण-चिह्न पहलेसे थे और लोगोंने देखा भी था, पर

उनकी अवस्था ऐसी नहीं थी। श्रद्धालुको ही ऐसी अलौकिकता दीखती है। वह उस बातको समझा नहीं सकता। जब जिसमें यह बीतती है, वह ही नहीं समझा सकता तो मैं तो फिर समझाऊँगा ही क्या? वास्तवमें जिसमें यह बीतती है, वही जान सकता है। महात्मा जब श्रद्धालुको छू देता है तो उसके सारे शरीरमें प्रेम और आनन्दसे इतनी विह्वलता हो जाती है कि वह बेहोश हो जाता है। छूनेके साथ सारा शरीर प्रेमसे ऐसा हो जाता है कि वह उसे सँभाल नहीं सकता।

भाव अलौकिक चीज है। भगवान्‌की प्राप्ति भावसे होती है। देवताकी प्राप्ति भी भावसे होती है। देवता न काठमें हैं, न मिट्टीमें हैं न पत्थरमें हैं। जहाँ भाव है, वहाँ देवता है। सभी चीजमें यही बात है। भाव ही प्रधान है। लौकिक बातोंमें भी यही बात है। एक स्त्रीको सिंह देखता है तो वह उसे खानेका पदार्थ देखता है, बच्चेको पालनेवाली माँ दीख रही है। महात्माको अलौकिक वस्तु दीख रही है, वह परमात्माको देख रहा है, विरक्तको त्याज्य वस्तु दीख रही है।

इसलिये महात्माओंमें, शास्त्रोंमें जिस प्रकार हमारी श्रद्धा हो, वही प्रयत्न हमें करना चाहिये।

❑❑

मार्मिक बातें

प्रश्न—आप लोगोंको चेष्टा करके सत्संगमें क्यों बुलाते हैं?

उत्तर—दो चीजें हैं—बुद्धि-विवेक, मन-स्वभाव। विवेक-बुद्धि तो कहती है कि चेष्टा नहीं करनी चाहिये, स्वभाव चेष्टा करता है। मन-बुद्धिका झगड़ा है। एक भाई भोजन कर रहा है। स्वभावसे भोजनकी ओर दृष्टि जाती है। विवेकसे कहते हैं नहीं जानी चाहिये। एक भाई किसीकी स्वभावसे निन्दा कर रहा है, उसकी विवेक-बुद्धि कहती है नहीं करनी चाहिये।

लोगोंको बुलानेसे क्या मिलता है? इसका उत्तर यही है—मान, बड़ाई। स्त्री, कंचन, आराम, ईर्ष्या इनका सम्बन्ध तो है नहीं, अब बची मान-बड़ाई। इसके विषयमें यह कहना है कि मिलता है ही। मैं चाहूँ या नहीं, इस विषयमें कुछ नहीं कहता। यदि पूछो कि क्या मिल सकता है तो इसका उत्तर है कि शुद्ध नीयत हो तो जो चाहे सो मिल सकता है। सब कुछ मिल सकता है। भगवान्‌को चाहे तो वह मिल जायँ। शुद्ध नीयत वही है, जिसमें स्वार्थ न हो। स्वार्थकी कामना हो तो उसकी सिद्धि हो जाय। स्वार्थकी न हो परमार्थकी इच्छा हो तो वह मिल जाय।

कोई कुछ न चाहे तो उसे क्या मिले? इच्छा करे ही नहीं तो भगवत्-इच्छा हो सो मिले। कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि कहे कि कुछ नहीं मिले तो फिर उसको घाटा ही पड़ा, माँगना ही अच्छा रहा। बात यह है कि एक अच्छे आदमीके यहाँ कोई नौकरी करे तो वेतन मिल जाता है। वेतन न ले तो अच्छे आदमी उसे ज्यादा-से-ज्यादा जो चीज वह लेता है उसे दे देते हैं। न

प्रवचन—दिनांक १३/१२/१९४०, दोपहर, गोरखपुर।

लेनेसे अधिक मिलेगा, यह भाव भी मनमें न रखे। नरसीजीसे शिवजीने कहा कि माँग। उन्होंने कहा कि आपपर ही भार रहा। आप जिसे सबसे बढ़कर समझें वह दे दें। उन्होंने भगवान्‌से मिला दिया।

सरकारमें बहुत दिन काम करनेके बाद घर बैठे पेंशन मिलती है। लाट साहबको तीन ही वर्षमें पेंशन हो जाती है। छोटे श्रेणीके आदमीको अधिक दिन काम करनेपर पेंशन होती है, पेंशनका अधिकार हो जानेपर—

(१) कई लोग पेंशन लेते हैं—काम भी करते रहते हैं।

(२) कई लोग पेंशन लेते हैं—काम नहीं करते हैं।

(३) कई लोग पेंशन नहीं लेते हैं—काम भी नहीं करते।

(४) कई लोग पेंशन नहीं लेते—काम करते हैं।

ऐसे ही मुक्तिरूपी पेंशन लेते हैं। सरकारका काम लोगोंको मुक्तिमें सहायता करना है। प्रजाका हित ही सरकारका काम है।

(१) वह लोग मुक्ति स्वीकार करके लोकहितका काम भी करते हैं।

(२) कई लोगोंने मुक्ति स्वीकार की—काम कुछ नहीं करते; जंगलमें, पहाड़ोंमें पड़े रहते हैं।

(३) कई लोग मुक्ति नहीं लेते, बस आपकी भक्ति चाहते हैं। भगवान् उनके हकको धरोहररूपमें रख लेते हैं।

(४) सब लोग भगवान्‌के भक्त बन जायँ। इसके लिये चेष्टा करता है। स्वयं मुक्ति नहीं चाहता। सब आपके भक्त बन जायँ।

भक्तोंकी दो श्रेणी है, ज्ञानियोंकी भी दो श्रेणी है। जो मुक्ति चाहते हैं वे ज्ञानी, जो नहीं चाहते हैं वे भक्त हैं। इनमें भी दो श्रेणी है। चारों ही श्रेष्ठ हैं। भेद हमलोगोंकी दृष्टिसे ही है।

परमात्माकी दृष्टिसे भेद नहीं है। हमारी दृष्टिमें ही ये चार भेद परमात्माकी प्राप्तिवाले पुरुषमें हैं।

प्रश्न—भक्त और ज्ञानी दोनोंको वास्तविक स्थिति प्राप्त हो जानेके अनन्तर उनके अन्तःकरणमें परमात्माके स्वरूपके निश्चयमें भेद रहता है या एकता?

उत्तर—धर्मी (शरीरसे तादात्म्य माननेवाला) दोनोंमें नहीं रहता। अन्तःकरणकी स्थितिमें भेद रहता है। जिस प्रकारकी प्रणालीसे वह चला है, इसी प्रकारकी चेष्टा उसके द्वारा होती है। प्रारब्ध, भोग, क्रिया, स्वभाव सब भिन्न-भिन्न हैं।

प्रश्न—साधनकाल और प्राप्तिके बादके अन्तःकरणके निश्चयमें किस तरहका अन्तर होता है?

उत्तर—एक महात्माका लेख पढ़कर उनके बारेमें निश्चय किया। उनके स्वभाव, बर्ताव आदिके बारेमें धारणा करके निश्चय किया। उसके बाद वह साक्षात् मिला। उस मिलनेके समयका ज्ञान एकदम अपरोक्ष है। पहलेवाला परोक्ष है, इसी प्रकारका अन्तःकरणका अन्तर है।

जिस पुरुषको भगवान् विशेष अधिकार दे देते हैं, वह सब कुछ कर सकता है। वह सब प्रकारका मार्ग, प्रणाली ठीक तरहसे बना सकता है। अधिकारपत्र देनेके बाद सेवक सेठको बेच भी सकता है। जितना सेठका अधिकार है, उतना ही सेवकका हो गया। सेठका जन्मसिद्ध है, सेवकको दिया हुआ है। न दे तो उसका साधारण सेवकका अधिकार है ही। आवश्यकता होनेपर ही दिया जाता है। अधिकारपत्रमें भी भेद होता है। जीवन्मुक्त पुरुषोंके अधिकार भी अलग-अलग होते हैं। यह सब जनताकी दृष्टिसे ही है। जनताके ही लाभ-हानिके

विचारसे है। अपने लिये तो अपनेको जो अधिक लाभ पहुँचावे, वही बड़ा है। बच्चेके लिये तो भगवान्‌से भी बढ़कर 'माँ' है।

श्रद्धेय और श्रद्धालु दोनोंमें एकमें भी कमी हो तो विलम्ब होता है। श्रद्धा दोनों प्रकारसे होती है। होते-होते शनैः-शनैः भी होती है और एकदम पहाड़को लाँघनेके समान तुरन्त हो सकती है। साधारण आदमीकी भी हो सकती है। एक क्षणमें सारे पापोंका नाश होकर हो जाती है। किसी समयमें ऐसी बात हो जाती है। दस दिन सत्संग करनेसे जो लाभ नहीं हुआ, एक दिनमें, एक क्षणमें एकदम वह लाभ हो जाता है। मानो आँख खुल गयी है।

दो आदमी चौंधिया गये। प्रयत्न कर रहे हैं। एक आदमीकी चौंध झट खुल गयी। दूसरेको बराबर प्रयत्न करनेपर भी बहुत देरमें खुली। कोई-कोई तो आयु बीत जाय, बीस वर्ष बीत जाय, उसी जगहपर वह चौंध वैसे ही है। सामान्य चालसे चलनेका मार्ग तो है ही। यह मार्ग भी है, तुरन्त लाभ हो जाता है। महत्कृपा, भगवत्कृपा कारण है।

परमात्माकी प्राप्तिके निकट पहुँच रहा है, पर दीखता नहीं है। दूसरा पहुँच रहा है, उसको दीखता भी है, दुनियाको भी दीखता है। कुँआ खोदनेमें एकमें पत्थर आ गया, एकमें बालू आ गयी, एकमें गीली मिट्टी आ गयी। तीनोंमें दस हाथ नीचे जाता है। पत्थरवाला डेढ़ हाथ खोदनेपर भी उसे कुछ पता नहीं कि कितनी दूर है। बालूसे तो जल अब छः इंच ही रहा है, पर वह निराश हो रहा है। जानकार लोग कहते हैं—निराश मत हो, जल निकट है। वह सोचता है, न मालूम कितने हाथ नीचे है और कितना खोदना पड़ेगा। वह फिर विश्वास करके खोदता है। छः

इंच खुदते ही, बस, एकदम जोरसे पानी निकलने लगा, पाताल फूट गया। जैसे किसी रंकको अथाह धन मिल गया, आनन्द हो गया। कहने लगा, आपकी कृपासे यह हो गया। छोड़ देता तो सब बरबाद हो जाता। मिट्टीवाला बिचला है।

बालूवालेको खोदते-खोदते ही आनन्द मिलता जाता है। गीली बालू निकलती जाती है। पानीके दर्शन भी होते जाते हैं। तीनों ही तरहकी बात है। पानीके निकट सभी जा रहे हैं, इससे भी विलक्षण बात है—साधनमें। सौ फुट खोदना है, पचास फुट खोदनेमें दो महीने लगे हैं और शेष पचास फुट खुद गया दो मिनटमें। विलक्षण बात हो जाती है। यह विशेष कृपाकी बात है। कुएँकी मिट्टी निकालते हैं, पचास फुटमें दो महीने लगे। शेष पचास फुट और है, पानी निकलनेमें दो महीनेकी देर है, कहते हैं कि अभी निकाल दें। पाइप बैठायी, शामको पानी आ गया। खोदना है तो तुम्हारी खुशी, खोदो। काम तो चल गया। पानी पीओ। पाइप बैठानेवालेकी कृपासे यह बात हो गयी। इस प्रकारसे साधनमें भी हो सकता है। इससे भी और विलक्षण बात है। इतनी विलक्षण है, कुछ बतलाया नहीं जा सकता। कैसा भी पापी हो, उसे भी भगवत्कृपासे एक क्षणमें भगवत्प्राप्ति हो जाय। जितने भी उदाहरण हैं सब अल्प शक्तिके हैं। उस विशेष शक्तिके साथ इनकी क्या तुलना है।

अड़ियल आदमी होता है, कहता है—रखो तुम्हारा पाइप, हम तो खोदेंगे ही। वह कहता है, अच्छा तुम्हारी इच्छा।

श्रद्धा होनेसे सब कुछ होता है। श्रद्धा भी क्षणभरमें हो सकती है। अनन्य चिन्तनसे सब होता है और अनन्य चिन्तन भी महत्कृपासे क्षणभरमें हो सकता है। साधारण आदमीके लिये तो

स्वर्गकी प्राप्ति ही कठिन है। ईश्वरकी कृपा और महत्कृपाके आगे कोई वस्तु कठिन नहीं है। हमको कठिन क्यों लगती है? हमारी अश्रद्धासे हमने कठिन मान रखा है। वस्तुतः तो कठिन है नहीं, हमने कठिन बना रखा है।

प्रश्न—ग्यारहवें अध्यायके दर्शनके बाद अर्जुनने '**करिष्ये वचनं तव**' क्यों नहीं कहा?

उत्तर—दर्शन होनेपर भी तत्त्व जानना और बाकी रह जाता है। भगवान् कहते हैं—'**मा ते व्यथा मा च विमूढभावः**' फिर चतुर्भुजरूप दिखलाते हैं। जबतक भगवान्का तत्त्व नहीं जाना जाता है, तबतक जाननेकी आवश्यकता है। इसको जनानेके लिये भगवान् बाध्य हैं, जनाना ही पड़ेगा। भगवान्ने जना दिया। आशीर्वाद दिया—'**व्यपेतभीः**'—अनन्य भक्तिका प्रकरण है। सबके लिये बाध्य नहीं हैं। मूढके लिये तो भगवान् कहते हैं—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

(गीता ९। ११-१२)

मेरे परमभावको न जाननेवाले मूढ लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको तुच्छ समझते हैं, अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यमात्रमें विचरते हुए मुझ परमेश्वरको साधारण मनुष्य मानते हैं।

वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिको ही धारण किये रहते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

(गीता ७। २५)

अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझ जन्मरहित अविनाशी परमेश्वरको नहीं जानता, अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है।

व्यर्थ आशा, कर्म, ज्ञान क्यों कहे, इसका फल नरक होना चाहिये, किन्तु किसी प्रकार भी भगवान्‌से सम्बन्ध हो गया, इसलिये नरक नहीं हो सकता।

श्रद्धाका प्रकरण चल रहा था। वास्तवमें श्रद्धा पुस्तकोंमें ही देखी जाती है, प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आती। हमलोग श्रद्धाकी छायाके किसी भागके आसपास घूम रहे हैं। श्रद्धालु तो श्रद्धेयकी बिना आज्ञा, बिना बतलाये, बिना कहे उसके उद्देश्यसे एक तिल भी बाहर नहीं जाता—न संकेत, न आज्ञा, कुछ नहीं है। श्रद्धेयके लक्ष्य और ध्येयके अनुसार ही श्रद्धालुकी क्रिया होती है। कठपुतलीकी कोई भी क्रिया सूत्रधारके संकेतके विरुद्ध नहीं होती, हो ही नहीं सकती। विपरीतका तो नाम-निशान ही नहीं है।

गायको मारना हमलोग कितना पाप समझते हैं। हमसे गाय काटनेकी क्रिया कभी स्वप्नमें भी नहीं हो सकती। क्या बात है? हमारा हाथ क्यों रुकता है? गायपर श्रद्धा है, गाय माता है। कहाँ गौपर श्रद्धा, कहाँ महात्माकी श्रद्धा। गौपर श्रद्धा शास्त्रसे ही तो हुई। हमारे द्वारा गाय कटे तो नरक होगा। महात्माकी आज्ञाकी अवहेलना होगी तो परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रहना पड़ेगा। नरक तो लाखों बार हुआ है, एक बार और सही, पर परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित होना कितनी बड़ी हानि है।

भगवान्‌के मनका पता कैसे लगे? श्रद्धालुको लगता है। पतिव्रताको पतिके मनका पता लगता है। पुराने नौकरको मालिककी सारी आवश्यकताओंका पता रहता है। आज्ञा करनेसे पहले ही मिट्टी, पानी, आसन, पूजाका बरतन सब चीजें तैयार हैं। आर्थिक दृष्टिसे नौकरी करनेवालेमें यह बात आ जाती है तो फिर श्रद्धावान्‌में क्या बात आ जायगी, कल्पना करो। इतनी दूर नहीं पहुँचे तो हाव-भाव, कटाक्षसे पता लग जाय, फिर तो बस, अपना विचार कुछ भी रहा हो, उसके संकेतके अनुसार बहुत प्रसन्नतापूर्वक काम करता है। एक आदमी लड़केको दवा देने लगा, पासमें विषकी शीशी पड़ी थी, भूलसे उसे उठा लिया। दूरसे दूसरेने कहा—विष है। उसका हाथ रुक गया। उसे कितनी प्रसन्नता हुई, अहो! आपने ही जीवनदान दिया। इसी प्रकार श्रद्धेयकी आज्ञाके पालनमें प्रसन्नता होती है।

इससे भी आगे सिद्धान्त बतलाना—उससे भी आगे यह कहना है कि मेरा तो यह सिद्धान्त है, अब तू जैसा ठीक समझे वैसा कर—'**यथेच्छसि तथा कुरु**'। जैसे यह घड़ी है, घरकी दीवालपर टँगी हुई है। उसके भीतर मणि है। मणिका प्रकाश दीवालपर पड़ता है, दूरका एक आदमी है, उसे घड़ी नहीं दीखती, मणि भी नहीं दीखती, पर प्रकाशको खोजता हुआ घड़ीतक आ गया।

रोते हुए करना—यह श्रद्धाकी सबसे घटिया स्थिति है, पर इसकी भी प्रशंसा ही की गयी है। करता जाय, करते-करते रोना मिट जायगा। घरवालोंके दबावसे ही पढ़े। पढ़ते-पढ़ते श्रद्धा हो जायगी। श्रद्धा नहीं हो तो भी बात मानकर ही करता रहे। यज्ञ, दान, तप भी न करनेकी अपेक्षा बिना श्रद्धासे ही करना अच्छा

है, फिर ईश्वरकी भक्तिकी तो बात ही क्या है। बिना श्रद्धा ही औषध खाओ, रोग तो मिटेगा ही। वस्तुका भी तो कुछ फल है।

प्रश्न—एक क्षणमें होनेवाली वह श्रद्धा कैसे हो? जिसमें पापी-से-पापीका क्षणभरमें परिवर्तन हो जाय। एकदम विलक्षण स्थिति कैसे हो जाती है।

उत्तर—विषयपर विचार होता है, पर बुद्धिकी बात मनमें आनी कठिन है, उससे कठिन वाणीमें, उससे कठिन लेखनीमें और उससे भी कठिन क्रियामें आती है। मनकी बड़ी भारी शक्ति है। मनरूपी ह्रदका लाखवाँ हिस्सा भी वाणीमें आना कठिन है। एक क्षणमें मनमें सातों काण्ड रामायणकी स्मृति आ जाती है। इतने भाव मनमें आ जाते हैं कि हजार मुखसे कहनेपर भी कहे नहीं जा सकते। इसी प्रकार जहाँसे मनमें यह विचार आता है, उस स्थानपर भी अगाध समुद्र भरा पड़ा है। वैराग्य, भक्ति, ज्ञान, कोई भी विषय स्मरणमें आते ही कितनी ही बातें याद आ जाती हैं? उन्हें कैसे कहा जाय।

❑ ❑

क्षणमें स्थिति कैसे बदले?

प्रश्न—कलका प्रश्न बाकी है—एक क्षणमें परिवर्तन हो जाय, एक साथ श्रद्धा बढ़ जाय, इसका क्या उपाय है?

उत्तर—तुलसीदासजीसे किसीने भगवान्के तुरन्त दर्शन करानेकी प्रार्थना की। तुलसीदासजीने कहा एक पेड़के नीचे बरछी गाड़कर पेड़पर चढ़कर उसपर कूद जाओ। भगवान्के दर्शन हो जायँगे। उसने वृक्षके नीचे बरछी गाड़ दी और वृक्षपर चढ़ा-चढ़ा सोच रहा था। दूसरे किसी राहगीरने पूछा—'क्या बात है?' वह बोला—'महात्मासे तुरन्त भगवान्के मिलनेका उपाय पूछा था, उन्होंने कहा—बर्छा रोपकर वृक्षपरसे कूद पड़ो, भगवान् मिल जायँगे। अब मैं सोच रहा हूँ कदाचित् कूदा भी और भगवान् न मिलें तो' उस सुननेवालेने कहा—'यह बात तुम बेच दो, कुछ ले लो।' उसने बेच दिया और खरीदनेवाला झट वृक्षसे कूदा उसे भगवान्ने उठा लिया। ऐसे ही एक बात आती है, नाना बाहर गये दौहित्रको तीन दिनके लिये पूजा दे गये। नानाने दौहित्रसे कहा था कि भगवान्के भोग लगाकर ही खाना। भगवान्ने भोग नहीं खाया। लड़केने देखा भूखे मरना ठीक नहीं—छूरी खाकर मर जाना ठीक है। अपनेको मारनेके लिये छूरी उठायी—भगवान् प्रकट हो गये। ऐसे ही बहुत-से दृष्टान्त आते हैं—भगवान् शीघ्र मिल गये।

महात्मा और ईश्वरकी कृपासे शीघ्र लाभ हो जाता है। उत्तंकपर ईश्वरकी कृपा हुई। भगवान्ने स्वयं उसे समझाया, अपना प्रभाव दिखलाया। श्रद्धा तो थी नहीं—भगवान्ने कहा तब

प्रवचन—प्रात:काल, दिनांक १४/१२/१९४०।

भी नहीं माना, कहा—विश्वरूप दिखलाओ नहीं तो शाप दूँगा। भगवान्‌ने विश्वरूप दिखला दिया। श्रद्धा हो गयी। सब काम हो गया। श्रद्धा तो नहीं थी पर धार्मिक पुरुष था, तपस्वी था, पापी तो नहीं था।

लौकिक उदाहरणमें कल रामकृष्ण परमहंसकी बात बतलायी थी। नास्तिकको एकदम विवेकानन्द बना दिया। कोई श्रद्धा नहीं थी। गौरांग महाप्रभुने बहुतोंको ऐसा बना दिया। जगाई-मधाई, धोबी आदिको भगवान्‌का भक्त बना दिया। वेश्या हरिदासको बिगाड़ने आयी थी और बन गयी भक्त, ऐसे उदाहरण तो बहुत आते हैं। श्रद्धा न हो तब भी तुरन्त विश्वास और तुरन्त प्राप्ति हो गयी। भगवान्‌की विशेष कृपाके बहुत उदाहरण आते हैं।

अहंकारके उदाहरण आते हैं। केनोपनिषद्‌का यक्षोपाख्यान-वायु, अग्नि, इन्द्रने अभिमान किया। इन्द्रको भगवान्‌ने उपदेश दिया, पहले श्रद्धा नहीं थी। अहंकारका नाश, श्रद्धाका होना और भगवान्‌की प्राप्ति—तीनों काम तुरन्त हो गये। इन्द्रके बाद अग्नि और वायुने भगवान्‌को जान लिया। भगवान्‌की विशेष दयासे इन लोगोंका अभिमान नष्ट हुआ। भगवान्‌ने दया करके ही अपना तत्त्व बतलाया। उनकी कोई चेष्टा श्रद्धाकी नहीं थी। भगवान्‌ने स्वयं ही दया करके प्रकट होकर उनको ज्ञान दिया। नियमसे तो सब बात होती ही है। भगवान् जब चाहें विशेष दया कर देते हैं।

हनुमान्‌जीकी भगवान्‌से भेंट होती है तब ब्राह्मणरूप लेकर आते हैं। वाल्मीकिरामायणमें विस्तारसे यह प्रसंग आता है। राम लक्ष्मणसे कहते हैं—यह ब्रह्मचारी विद्वान् है। इतनी बातें हमसे की, परन्तु व्याकरणकी कोई अशुद्धि नहीं आयी। भगवान्‌से

वार्तालाप करके ही हनुमान्‌जीका भाव बदल गया, श्रद्धा हो गयी, प्राप्ति हो गयी।

बालिपर विशेष दया हुई, बालि कहता है—**‘*धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं*’** श्रद्धा नहीं है। वाल्मीकि-रामायणमें विशेष वर्णन आता है। बालिने बहुत जवाब-सवाल किये। यहाँतक कह देता है कि मेरे सामने आकर युद्ध करते तो यमलोक भेज देता। धर्मसे, नीतिसे, युक्तिसे उसने रामकी बहुत निन्दा की। भगवान्‌में उसकी श्रद्धाका नाम-निशान नहीं है। भगवान्‌ने बहुत छिपे हुए शब्दोंमें उसको अपना प्रभाव दिखला दिया। बस, पहचान गया। पापी था, अश्रद्धालु था, पर क्षणभरमें श्रद्धा हो गयी। भगवान्‌की विशेष कृपा थी। वाल्मीकि-रामायण इतिहासमें प्रधान प्रमाण है ही। इस प्रसंगमें कई अध्याय हैं। खूब शास्त्रार्थ हुआ है। भगवान् उसका युक्तियोंसे ठीक उत्तर नहीं दे सके। उनकी इच्छा नहीं थी। इतना ही कहा—मुझ निर्दोषीको तुम दोष दे रहे हो। युक्तियाँ नहीं दीं। तर्कसे सिद्ध नहीं किया। ईश्वरत्वसे, प्रभावसे सिद्ध कर दिया। ईश्वरकी विशेष कृपाकी बात थी। क्षमाने श्रद्धा करा दी और अपनी प्राप्ति करा दी।

महात्माकी विशेष कृपाकी बात—गौरांग महाप्रभुका उदाहरण विस्तारसे मिलता है। विवेकानन्दपर श्रीरामकृष्ण परमहंसने कृपा की, नास्तिक था। नियमकी बात थोड़े ही थी। ऐसे ही हरिदासकी कृपा वेश्यापर हुई।

पिंगला वेश्या इतनी नीच थी। दत्तात्रेयजीके दर्शनमात्रसे उसकी बुद्धि बदल गयी और उसे भगवत्प्राप्ति हो गयी। महात्माओंके दर्शनसे, स्पर्शसे बहुतोंकी क्रिया बदल गयी हो और श्रद्धा होकर भगवत्प्राप्ति हो गयी—ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं।

जाजलि और तुलाधार वैश्यकी बात—जाजलिकी तुलाधारमें कोई श्रद्धा नहीं थी। उनसे वार्तालाप हुआ, श्रद्धा नहीं बढ़ी। प्रभाव देखकर श्रद्धा हो गयी। उसकी अच्छी गति हुई।

जडभरतकी बातें सुनते ही रहूगण पालकीसे उतर पड़ा, क्षणभरमें श्रद्धा हो गयी। नौकामें महात्माके साथ दुर्व्यवहार करनेवालेकी तुरन्त श्रद्धा हो गयी। महात्माने आकाशवाणीसे कहा, इन्होंने मेरे साथ दर्शन, भाषण, स्पर्श सब ही तो कर लिया। ये महात्मा ही हो जायँ। उन पापियोंकी तुरन्त श्रद्धा हो गयी, उनका कल्याण हो गया।

दुर्वासाजीने अम्बरीषका प्रभाव देखा। पहले तो कृत्या पैदा की, पर भक्तका प्रभाव देखकर श्रद्धा हो गयी।

महात्माओंके गुण, प्रेम, प्रभावकी बातें सुननी, आज्ञापालन करना श्रद्धा उत्पन्न करनेका उपाय है। सत्यकामने आज्ञापालन की। पहले श्रद्धा कम होनेसे भी आज्ञापालनसे बढ़ गयी। ईश्वर और महात्माकी कृपासे, इनके संगसे, दर्शनसे ही श्रद्धा बढ़ जाय, ऐसा भी होता है। कोई-न-कोई हेतु तो होता ही है। महात्माओंमें श्रद्धाकी इच्छा हो तो महात्माओंमें जिनकी श्रद्धा है, उनका संग करनेसे श्रद्धा हो जाती है। किसीको तुरन्त हो जाती है, किसीको देरसे होती है। मनमें तो यह बात आती है कि इससे भी कोई विलक्षण उपाय है, जिससे क्षणभरमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाय। ऐसी क्रिया करनेसे बहुत शीघ्र श्रद्धा हो जाय।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (गीता ४। ३४)

उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥ (गीता १३। २५)

परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्दबुद्धि पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं।

आज्ञापालनसे श्रद्धा होना तो सामान्य बात है, डंकेकी चोट है। नयी बात भी है, श्रद्धा होनेमें श्रद्धाकी वृद्धिमें भी सहायक है।

श्रीस्वामीजी—अनुकूल बन जाय, कठपुतली बन जाय तो क्षणमें काम हो जाय।

उद्धवजीने आकर कहा—आपने मुझे गोपियोंको योग सिखलानेके लिये नहीं, अपितु उनसे प्रेम सीखनेके लिये भेजा था। मुझे तो अब गोपियोंकी चरणधूलि मिलती रहे। भगवान्ने क्या सिखलाया कि भक्तोंकी चरणधूलिसे ही कल्याण हो जाता है। कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनको घुमा-फिराकर कहा जाता है। कितनी बातें तो ऐसी हैं जो अपने वशकी बात नहीं है। जैसे हृदयपर हाथ रख दिया।

अपने मनका पाजीपना ही बाधक है। महात्माओंकी आज्ञा—उद्देश्यका पालन करना ही उनकी परम सेवा है। मानसिक सेवा, मानसिक प्रणाम यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। आज्ञापालन करना, संकेतके अनुसार बन जाना—यह परम सेवा है। मनका पाजीपना ही तो इसमें बाधक है। उपाय है—भगवान्से प्रार्थना करना। हृदयसे प्रार्थना करें तो बन जाय। महात्मासे ही वाणीसे, मनसे प्रार्थना करनेसे भी काम बन जाता है। शरण हो जाना—अनुकूल हो जाना। पहले भाव हो फिर उसके अनुसार क्रिया होने लगे। भाव न हो तो क्रियासे भाव पैदा हो जाय। बीजसे वृक्ष, वृक्षसे बीज—दोनों अन्योन्याश्रित हैं। दोनों चीज जातिसे एक ही है।

उत्तम भावसे उत्तम आचरण पैदा होते हैं। उत्तम आचरणसे उत्तम भाव बढ़ते हैं (गीता ४। ३४)। उत्तम क्रियासे उत्तम भाव पैदा होता है।

भीतरमें ऊँचा भाव नहीं हो तो भी ऊँचे भावकी क्रिया करनी चाहिये। उत्तम क्रिया करनेसे उत्तम भावकी उत्पत्ति होगी। उत्तम भाव ही बलवान् है। क्षणभरमें भी ये बातें हो सकती हैं। महात्माकी कृपासे, ईश्वरकृपासे तो हो ही सकती है। महात्माकी कृपा जिसपर होती है, उसको तो बिना हेतु ही माननी चाहिये। हेतुसे होती है तो हेतु प्रकट करना तो हमारे प्रयत्नपर है। हमारा ऐसा प्रयत्न होना चाहिये, जिस क्रियाके करनेसे हमारेपर उनकी पूर्ण दया हो जाय।

वह बात बुद्धिमें स्वयं ही पैदा हो तब ठीक है। उसकी गर्ज हो तब वह पैदा हो। महात्मा कैसे दबें, यह सोचनेकी बात है। मक्खन कोमल है, थोड़े तापसे ही तप जाता है। महात्माका हृदय उससे भी कोमल है। वह कैसे दबे यही चेष्टा करें। किस प्रकारसे द्रवीभूत होते हैं—प्रार्थना करनेसे, रोनेसे, आज्ञापालनसे। ऐसा कैसे हो—झूठे रोवें तो माँ-बाप समझते हैं कि नाटक करता है। अपने हृदयमें दुःखसे व्याकुल हो, तब सच्चा रोना आये। मनमें जिज्ञासा हो तो वह जिज्ञासा स्वयं ही युक्ति खोज लेती है। इच्छा प्रबल होनी चाहिये। भूखा आदमी स्वयं ही तृप्तिका उपाय सोचता है। प्यासा आदमी पानीके लिये स्वयं ही चेष्टा करता है। ऐसे ही मनमें भूख होनी चाहिये। महात्माओंकी दया क्षणभरमें हो जाय, उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। धनी दयालुको किसीका सच्चा संकट समझमें आ जाय तो फिर उसके कार्यको सिद्ध होनेमें कितनी देर लगती है। नया आदमी, जान न पहचान, केवल धनी दयालुके सामने दुःख प्रस्तुत हो गया। नौका उलट गयी, दयालु तैराक है। दया, शक्ति दोनों है। उस समय

उस देखनेवालेकी क्या दशा होती है। इसी प्रकार संसारमें कोई व्याकुल आदमी हो तो उसका उद्धार होते क्या देर लगती है।

एक आदमीने महात्मासे कहा—'मुझे बहुत भारी इच्छा है, क्षण-क्षण भारी है।' महात्माने कहा—'ऐसी बात होती तो भगवान् तुमको मिल जाते।' वह बोला—'नहीं महाराज, क्षणभरमें मिलने चाहिये।' 'अच्छा चलो।' तालाबमें नहाने ले गये। थोड़ी दूर ले जाकर महात्माने उसे पानीमें डुबाकर ऊपरसे दबा दिया, वह तड़फड़ाने लगा। महात्माने बाहर निकालकर समझाया। जैसे जलसे निकलनेके लिये तुम्हें क्षण-क्षण भारी मालूम देता था, ऐसी स्थिति तुम्हारी हो जाती तो संसार-समुद्रसे भी भगवान् तुम्हें निकाल देते।

राजा जनकने एक क्षणमें ज्ञान करा देनेकी घोषणा की, जो ऐसा नहीं करा पाते, राजा उन ब्राह्मणोंको कैद कर देते थे। अष्टावक्र आये। राजा बोले—'घोड़ेके एक पागड़ेमें पैर हो और दूसरे पागड़ेमें मैं पैर रखूँ, इतनी देरमें ज्ञान होना चाहिये।' अष्टावक्र बोले—इतनी देरमें तो तीन आदमियोंको ज्ञान हो जायगा। राजा तैयार हो गये। अष्टावक्र बोले—मनको मुट्ठीमें पकड़ो, पात्र बनो।

ईश्वर और महात्माकी कृपासे एक क्षणमें तो लाखोंका उद्धार हो सकता है। हमलोग वास्तवमें आतुर हों तो सब हो सकता है। धनी-दयालुके सामने दूसरेका दुःख आ पड़े, फिर उसकी क्या दशा होती है। आगमें जलनेवाला—त्राहि माम्! पुकार रहा है। आतुर दुःखीको देखकर दयालु और शक्तिवान् निकाल ही देगा। महात्मा दयालु हैं, शक्तिवाले हैं पर हम दुःखी नहीं हैं, चैनसे हैं। उनको क्या कहें। वास्तवमें जिज्ञासा कहाँ? मुँहमें तो इच्छा है, हृदयमें नहीं है।

❑❑

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	पुस्तक
683	तत्त्वचिन्तामणि
814	साधन-कल्पतरु (तेरह महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)
1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?
1631	भगवान् कैसे मिलें ?
1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य
1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं
1666	कल्याण कैसे हो ?
527	प्रेमयोगका तत्त्व
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा
528	ज्ञानयोगका तत्त्व
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-१)
267	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-२)
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय
298	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य
243	परम साधन—भाग-१
244	,, ,, भाग-२
245	आत्मोद्धारके साधन-भाग-१
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति
579	अमूल्य समयका सदुपयोग
246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)
247	,, ,, (भाग-२)
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति
1296	कर्णवासका सत्संग
1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता

कोड	पुस्तक
248	कल्याणप्राप्तिके उपाय
249	शीघ्र कल्याणके सोपान
250	ईश्वर और संसार
519	अमूल्य शिक्षा
253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि
251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि
252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा
254	व्यवहारमें परमार्थकी कला
255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम
258	तत्त्वचिन्तामणि
257	परमानन्दकी खेती
260	समता अमृत और विषमता विष
259	भक्ति-भक्त-भगवान्
256	आत्मोद्धारके सरल उपाय
261	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान
262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र
263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१
265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-२
268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१
269	परमशान्तिका मार्ग—भाग-२
543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह
1530	आनन्द कैसे मिले ?
769	साधन नवनीत

कोड	पुस्तक
599	हमारा आश्चर्य
681	रहस्यमय प्रवचन
1021	आध्यात्मिक प्रवचन
1324	अमृत वचन
1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय
1433	साधना पथ
1483	भगवत्पथ-दर्शन
1493	नेत्रोंमें भगवान्को बसा लें
1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय
1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो ?
1561	दुःखोंका नाश कैसे हो ?
1587	जीवन-सुधारकी बातें
1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम
292	नवधा भक्ति
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी
273	नल-दमयन्ती
277	उद्धार कैसे हो ?— ५१ पत्रोंका संग्रह
278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह
280	साधनोपयोगी पत्र
281	शिक्षाप्रद पत्र
282	पारमार्थिक पत्र
284	अध्यात्मविषयक पत्र
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें
680	उपदेशप्रद कहानियाँ
891	प्रेममें विलक्षण एकता
958	मेरा अनुभव
1283	सत्संगकी मार्मिक बातें
1150	साधनकी आवश्यकता

कोड	पुस्तक
320	वास्तविक त्याग
285	आदर्श भ्रातृप्रेम
286	बालशिक्षा
287	बालकोंके कर्तव्य
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा
290	आदर्श नारी सुशीला
291	आदर्श देवियाँ
300	नारीधर्म
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो ?
293	सच्चा सुख और.......
294	संत-महिमा
295	सत्संगकी कुछ सार बातें
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म
310	सावित्री और सत्यवान्
299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित
623	धर्मके नामपर पाप
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ)
311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य
306	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?
307	भगवान्की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण)
316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति
314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य
1944	परम सेवा